श्री वैष्णवों में चार सम्प्रदाय मुख्य माने जाते हैं-(१) श्री लक्ष्मी (रामानुज) सम्प्रदाय, (२) शिव (अर्थात् विष्णु स्वामी) सम्प्रदाय, (३) ब्रह्म (मध्यसम्प्रदाय), और (४) सनकादि (निम्बादित्य) सम्प्रदाय ।

हमारे चरित्रनायक श्री १०८ रामानुज स्वामीय सम्प्रदायान्तर्गत श्री १०८ रामानन्द स्वामी के सम्प्रदाय के वैष्णव हैं । श्रीसम्प्रदाय के आदि प्रवर्तक श्रीलक्ष्मीजी मानी जाती हैं जिन से कईएक पीढ़ियों के बाद श्री१०८रामानुज स्वामी * हुए । उन्हों ने आदि "श्री" सम्प्रदाय की परिपाटी में कुछ हेरफेर किया । उन से ७४ गद्दियां हुईं । उन में से एक गद्दी में श्री १०८ रामानुजस्वामी से कई पीढ़ियों के बाद १०८श्री रामानन्द†

---

* द्राविड़देश में कांचीपुरी के पास कवेरीगंगा के तट पर "भूतनगरी" ग्राम में हारीत ऋषीश्वर के वंश में इन का आविर्भाव हुआ था। इन के पिता का नाम श्री केशवजय्या और माता का नाम श्री कान्तिमती जी था। आप अद्वैत मत के खण्डन करने वाले और श्रीसम्प्रदाय के संस्थापक हुए हैं । बाल्यावस्था ही से आप की बुद्धि बड़ी विचक्षणा थी। इसी से आप शेष जी के अवतार माने जाते हैं। सभी पुरातत्ववेत्ताओं ने इन के परमधाम का समय ईस्वी १२वीं शताब्दी माना है। मु० तपस्वीराम, महोदय रमेशचन्द्रदत्त तथा ए० सी० मुकुर्जी ने १२वीं सदी लिखा है। पण्डितवर हरप्रसाद शास्त्री एम० ए० ने ११३७ ई० लिखा है। W. W. Hunter साहिब ने ११५० लिखा है । श्री सम्प्रदाय के ग्रन्थों से विक्रमीय सं० ११९४=११३७ ई० होता है ।

† विक्रमीय संवत् १३५६ के माघ कृष्ण सप्तमी को श्री प्रयागराज में एक कान्यकुब्ज ब्राह्मण पुण्यसदन के घर में सुशीलादेवी के कोख से इन का प्रादुर्भाव हुआ। आप धर्मसंशोधकों में अगुआ

स्वामी हुए। इन्हों ने भी वैष्णवधर्म्म में समयानुसार कुछ परिवर्तन किया जिस से ये एक धर्म्मसंशोधक (Reformer) माने जाते हैं। इन का संशोधित सम्प्रदाय " रामानन्दीय " सम्प्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है जिस की परशाखाएं १२ चेलों * से हैं और उन्हीं १२ से ५२ द्वार हैं। हमारे चरित्र-नायक ने निजकृत " भगवद्गीता की टीका " के पृष्ठ २५९-६० में इस का सविस्तर वर्णन किया है।

जो लोग विशुद्ध रामानुजसम्प्रदाय के अनुगामी हैं वे "आचारी" और जो लोग विशुद्ध रामानन्दस्वामी के उपदेशों के अनुगामी हैं वे " रामानन्दीय " कहलाते हैं। इन दोनों सम्प्रदायों में कुछ प्रभेद है। (१) आचारी श्री लक्ष्मी-नारायण, श्री राधाकृष्ण एवम् श्री सीताराम के मंत्र की उपासना बताते हैं और रामानन्दीयसम्प्रदाय में केवल श्री सीताराम का मंत्र दिया जाता है। (२) आचारी केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय को मंत्र उपदेश करते हैं और रामानन्दीय उन सब जाति वालों को शिष्य बनाते हैं जिन के हाथ का छुआ पानी पीया जाता है। किन्तु आदि में इस प्रकार का नियम नहीं था। पहिले रामानन्दीयसम्प्रदाय में सब जाति के मनुष्य को मंत्रोपदेश किया जाता था। (३) आचारी श्री शिव जी से वा शैवलोगों से परे रहते हैं और

हुए। आप सर्व जाति तथा सर्वाश्रमियों को उपदेश देते और शिष्य बनाते थे। ए० सी० मुकर्जी तथा W. W. Hunter आदि ने इन का जन्म सम्वत् १३५६ अर्थात् १३०० ई० में माना है।

* श्री अनन्तानन्द, श्रीसुरेश्वरानन्द (श्री सुरसुरानन्द), श्री कबीर जी, श्रीसुखानन्द, श्रीपद्मावत, श्रीनरहरिदास, श्रीपीपाजी, श्रीभवानन्द, श्रीरैदासजी (रविदास), श्रीधना, श्रीसेन और श्रीसुरसुरीजी।

रामानन्दीय श्री शिव जी को श्री सीताराम की भक्ति की प्राप्ति का सहायक मानते हैं।

हमारे चरित्रनायक के उपास्यदेव युगलस्वरूप श्री सीताराम हैं, क्योंकि इन्हों ने एक स्थान में लिखा है "नित प्रमोदवन अवधपुरी, सुमिरों सीय रघुबीर"। और इन की भावना "शृंगाररस" * है। इस सम्बन्ध में इन का नाम "रूपकला" है। इन के रचे हुए पदों में भी यही नाम पाया जाता है, परन्तु कभी २ पदों में ये "दीन" भी लिखते हैं।

"शृंगारभावना" सम्बन्धी शिक्षा इन्हें विशेषकर बेगूसराय ज़िला मुंगेर निवासी श्रीरामपदास (श्यामनायिका) जी, गुड़हट्टा ज़िला भागलपुरनिवासी श्री रामचरणदास

---

* श्री मद्भगवद्गीता के १२वें अध्याय की टीका पृ० २५२ में इन्होंने शृंगार, सख्य, वात्सल्य, दास और शान्ति ये पांच रसों (भावनाओं) का नाम दिया है और श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "नारदभक्तिसूत्र" के भाष्य में छः प्रकार की भावनायें लिखी हैं—अर्थात् भीतभाव (संसार के दुःखों से भीत हो कर ईश्वर में अवलम्बन करना); स्वामीभाव (ईश्वर को संसार का स्वामी मान कर "दास्य भाव" रखना); सर्वभाव (छोटे बड़े, जड़ चैतन्य सबों में ईश्वरभाव रखना); सख्यभाव; वात्सल्यभाव एवम् कान्ता (शृंगार) भाव; और उन्हों ने लिखा है कि सबों में पूर्व पूर्व से उत्तर उत्तर अधिक उत्तम है जिस से "शृंगारभावना" ही सर्वश्रेष्ठ पाई जाती है। हम देखते हैं कि किसी २ अंग्रेज़ का भी ऐसा ही सिद्धान्त है क्योंकि Newman साहिब ने लिखा है—"If thy soul is to go on into higher spiritual blessedness, it must become a *woman*, yes, however manly you may be among men."—Newman.

(हंसकला) जी एवम् कक्ष्मणकिला, श्री अयोध्यानिवासी श्री जानकीवरशरण (प्रीतिलता) जी से प्राप्त हुई है। श्री १ हंसकला जी को ये अपनी आचार्य्या मानते हैं जैसा कि इन के बनाये " भावनाअष्टयाम " ग्रंथ से विदित होता है। "श्री पीपाजी की कथा " में इन्हों ने उपर्युक्त सब लोगों की बन्दना भी की है। यथा :—

" बन्दों श्री सियसहचरी, हंसकला पदकंज।
श्यामनायिका नलिनपद, पुनि प्रणवों सुखपुंज ॥
श्री जानकिवरशरणपद, प्रणवों बारम्बार।
मो सों सठ पर है सदा, जिन की कृपा अपार ॥ "

ऐसा कथित है कि:—

" नाम, रूप, लीलाललित, धाम, धारणा पांच।
रामचरण इन पांच बिनु, रामउपासक कांच ॥ "

पंचधारणा * अर्थात् उपासनानुसार भगवदाधीन (प्रपत्तिसूचक) नाम; भगवदायुध-धनुष, बाण, शंख तथा चक्र और क्रीट चन्द्रिकादि के तप्त वा शीतल (और युगल नाम के शीतल) छाप; ऊर्द्ध्वपुण्ड्र और श्री; तुलसी की कंठी माला; युगल सीतारामंत्र जो वैष्णव धारण न करता हो उसे कांच अर्थात् अपूर्ण वैष्णव समझना चाहिये। परन्तु ये सब बातें हमारे चरित्रनायक में आदि ही से देखी जाती हैं। अपने को कौन कहे अपने संगी साथियों को भी ये पूरा वैष्णव बनाए रहते थे। यह आंखों की देखी हुई बात है कि ये जब पटने में डिपुटी इन्सपेक्टर स्कूल थे † तो इन

---

* पंच धारणा और नाम, रूप, लीला तथा धाम सब मिल कर ९ बातें आवश्यकीय कही गई हैं।

† जब आप पटने में थे तब हम को भी आप से परिचय का

के पालकीवाहक कहार, इन के भृत्यगण और चपरासी सब ही वैष्णवों के समान तिलक कंठी आदि धारण किये रहते थे। इन के सम्मुख तो नहीं परन्तु परोक्ष में कोई २ इस पर आक्षेप भी करते थे कि कहारों का वैष्णवस्वरूप बना कर उन सबों से अपनी पालकी ढोलवाना गृहस्थ को उचित नहीं क्योंकि यह वैष्णवों के कंधे पर सवारी करनी है। प्रत्येक मनुष्य को अपनी समझ के अनुसार करने और कहने का अधिकार है, परन्तु ऐसा करने में, जहां तक हम समझते हैं, इन का यह विचार था कि तिलक कंठी धारण किये रहने से वे लोग खाने पीने में भक्ष्याभक्ष्य का ध्यान रखेंगे जिस से इन के सदाचार में कुछ बाधा न पड़ेगी और उन लोगों का भी स्वयम् कल्याण होगा।

पूर्वोक्त निज के लोगों के सिवाय और जिन २ लोगों को ये वैष्णव धर्म्मानुसार तिलक लगाए और कंठी माला धारण किये पाते थे उन पर विशेष स्नेह दरसाते थे और यह बात आज तक इन में पाई जाती है।

बहुत से लोग सांसारिक अन्यकार्य्यों के समान गुरु से दीक्षित होना भी साधारण व्यवहार समझते हैं। कितने तो दीक्षित होने के बाद कदाचित् भूल कर भी गुरुमंत्र नहीं

सौभाग्य हुआ था, क्योंकि हम बाकरगंज-सालिमपुरनिवासी निज मित्र और सहपाठी बाबू बदरीलाल संस्थापित मिडिल इंगलिश स्कूल के सिक्रेटरी और बांकीपुर "सुनीतिसंचारिणीसभा" के कोषाध्यक्ष थे और आप स्कूलों के डिपुटी इंस्पेक्टर और उस सभा के एक प्रधानसभासद थे और धन से भी उस की बराबर सहायता करते थे।

जपते और कितने स्नानान्तर हाथ घुमाकर एक मिनिट नाक छू कर बस जान का छुटकारा कराकेते हैं और संसार में गुरु भी कोई पदार्थ है यह बात उन्हें तभी स्मरण होती है जब कभी गुरु महाराज स्वयम् कृपाकर उन्हें दर्शन देते हैं। इस कृपा पर भी कितनों का गुरु के शुभागमनसे प्राणपखेरु विकल होजाता है कि ये कौन बला पहुंचे, इन की उपस्थिति में तो रागरङ्ग में बड़ी ही बाधा पड़ेगी। परन्तु जिस व्यक्ति ने शिष्य हो कर भी गुरुमंत्र का जप, नाम कीर्तन और श्री गुरुचरण में प्रेम नहीं किया, ईश्वरभक्ति नहीं की और जो धर्म्मचर्चा में रत नहीं हुआ उस से तो वही उत्तम है जो विना दीक्षित हुए ही रह जाय। दीक्षित हो कर भी यदि—

"राम नाम सँग मन नहिं हेता। जो कछु कीनो सोउ अनेता"

तब तो—

"वातें उत्तम गनिये चँडाला। नानक जिह मन बसहिं गोपाला"

बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं कि जिस धर्म्म वा सम्प्रदाय के अनुगामी हैं उस से भिन्न अन्य धर्म्म वा सम्प्रदाय से घृणा करते हैं। किसी एक देव वा देवी में अनन्य भाव रखना और एक ही धर्म्म वा मत में अटल विश्वास रखना यह तो अवश्यमेव परम कर्तव्य है, परन्तु अन्यान्य धर्म्मों के भी तत्वों को जानना और उपदेशों को हृदयांकित करना यह किसी प्रकार हानिकारक नहीं होता; और किसी धर्म्म वा मत से द्वेष रखना यह तो महा मूर्खता है। सब धर्म्मवाले एक ही प्रभु के खोजी हैं चाहे किसी मार्ग से क्यों न जाते हों। एक विद्वान ने कहा है कि :—

"मंज़िले हर मशरबो मज़हब सराये कूय ऊस्त।
इन्तहाये राह हफ़तादो दो मिल्लत सूय ऊस्त॥"

(अनुवाद–सकल धरम ठहराव है, तासु खोर कह संत ।
पंथ बहत्तर धर्म्म कहँ, तिहि दिसि होवत अन्त ॥)

और सब धर्म्म के सच्चे प्रेमियों को ईश्वर यथायोग्य फल भी देंगे, क्योंकि स्वयम् ईश्वर का वाक्य है कि :–

" ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्माऽनुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ "

किन्तु आदि ही से हमारे चरित्रनायक में कोई उपर्युक्त दूषणीय बात नहीं पाई गई । शिष्य होने पर कौन कहे बाल्यावस्था ही से ये ईश्वरभजन में मस्त रहते थे और इन का चित्तचंचरीक प्रभु के पादपद्म पर मोहित हो रहा था । ये सदा सब धर्म्म वालों से मिला भी करते थे । सनातन-धर्म्म, कृस्तानी * धर्म्म एवम् मुसलमानी इत्यादि विविध धर्म्मों और मत मतान्तरों के सिद्धान्तों को मन लगा कर सुनते और समझते थे । परन्तु तो भी " सूरदास की कारी

---

* पूर्णिया तथा भागलपुर में पादड़ी रेवरेण्ड जे॰ बी॰ आर्चर साहिब से इन्हें बहुत साथ रहा । रंगरूप, धर्म्मकर्म्म, आचारव्यवहार सब बातों में विभिन्नता होने पर भी दोनों में गाढ़ी मित्रता रही ; भेंट होने ही से दोनों महाशय प्रसन्न चित्त हो कर धर्म्म-चर्चा का आनन्द उठाते थे और धर्म्मतत्वों पर विचार करते थे । परन्तु पादड़ी साहिब की मित्रता और सत्संग की घनिष्ठता का इन के धर्म्म पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ और न एक योरपदेशीय से मित्रता करने के लिये इन्हें किसी क्लब का मेम्बर बन कर अपने आचारव्यवहार को तिलांजलि ही देनी पड़ी थी । जो लोग पत्रों में लिखा करते हैं कि गौराङ्गों के साथ क्लबों का मेम्बर हो होने से परस्पर प्रीतिरीति की सम्भावना है अन्यथा नहीं, क्या वे लोग इन महाशयों की परस्परप्रीति से कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं ?

कमरिया चढ़ै न दूजो रंग।" आदि ही से नीलसरोरुह-श्याम शोभाभिराम श्री सियपिया राम का जो इन पर रङ्ग चढ़ा था वही बराबर चढ़ा रहा। ये आदि ही से जो वैष्णव थे सो बने रहे। भला ईश्वर का कोई सच्चा प्रेमी कभी निज इष्टदेव से विमुख हो सकता है वा किसी अन्य मत वा सम्प्रदाय से द्वेष रख सकता है? वह तो सब से सदा भ्रातृभाव रखता हुआ अपने इष्टदेव ही में दृढ़ निष्ठावान रहेगा।

इन्हों ने भगवद्गीता के बारहवें अध्याय की टीका में स्वयम् लिखा है "मित्रगण! प्रिय पाठक! प्रिय भाइयो! आप अपने को चाहे जिस जिस नाम से क्यों न पुकारिये (वैष्णव, शैव, सनातनधार्म्मिक, अहिंसक, भक्त, स्मार्त, ब्राह्म, वेदावलम्बी, अमुक देवोपासक, वैरागी, संन्यासी, उदासी, त्यागी, महामायाभक्त, आर्य्य, हिन्दू वा भारतवासी) कुछ ही सही, परन्तु 'एक' की केवल एक ही की, सन्तति अपने को जान कर भाइयों का सा मेल और परस्पर व्यवहार में एकता का आग्रह और नेम प्रेम सब के सब आपस में वर्तिये; शुभ अभ्यासों में तथा निज निज जाति (वर्णाश्रम) धर्म्म में पक्के; क्षमाशील, सत्यप्रिय, सत्यवर्त्ती, उद्योगतत्पर, स्वच्छ, शुद्ध, सर्वहितरत और अतिदृढ़ रहिये; फिर भी उस के साथ ही साथ भिन्नचित्तता, निन्दा, मत्सर, दम्भ, स्वार्थ वा फूट से बच कर परस्पर मेल, उदारता परमार्थ, ऐक्य का वर्ताव अवश्य पूरा पूरा रखिये ... . खाने पीने में, धर्म्म में, सम्प्रदाय, पन्थ वा मत में, भारत भर के हिन्दुओं की एकता असम्भव अनुचित तथा अनावश्यकीय है। अपने २ मत तथा सम्प्रदाय में ही स्थिर रह कर, विरोध तजकर, परमात्मा में भक्ति

तथा उद्यम व्यवहार में परिश्रम करने में निन्दा लड़ाई फूट और भेद न करना, बरन् मिल जुल के बर्ताव और ऐक्य आपस में रखना यही भूखों न मर के चित्त में आनन्द पाने तथा लोक परलोक में दुःख न उठाने की सहज रीति है।"

पूर्वोद्धृत तथा इन के अन्य लेखों और ग्रंथों के देखने से स्पष्ट विदित होता है कि ये और लोगों के समान दूसरे धर्म्मवालों से द्वेष भाव रखना उचित नहीं समझते। यह बड़ा ही सराहनीय गुण है, यह महत्वसूचक लक्षण है। इसी को सहज साधुता कहते हैं। यथार्थ धर्म्मपरायण ईश्वर-प्रेमी का यही कर्तव्य है कि सब को अपना समझे, सब से अकृत्रिम प्रेम रखे एवम् सब सज्जन पुरुषों से मिल कर यथा-सम्भव सद्गुणों और सदोपदेशों का संग्रह करे।

धर्म्म ईश्वर की एक अति मनोहर अकथनीय आनन्द-प्रद अपूर्व वाटिका है। अनेक मतमतान्तर इस वाटिका के नानाजाति के कुसुमवृक्ष हैं जिन की उच्चाशयपूर्ण सुन्दर-शिक्षाएं सुगन्धमय पराग हैं। ईश्वर के सच्चे प्रेमी निर्दम्भी सन्तजन ही मधुमक्षिका के समान उन परागों का संग्रह कर सद्ग्रंथ रूपी मधुछाता की सुन्दर रचना करते हैं जिस का स्वादिष्ट मधु जगोपकारक, भव-भय-नाशक भेषज हो कर त्रयतापजनित सांसारिक विकारों को शमन करता हुआ आत्मा को सुखी बनाता है और जीवों को सर्वकल्याण-कारक, पापप्रहारक, जनउद्धारक महाशोभायमान सकलसुख-निधान श्री भगवान के चरणकमलों तक पहुंचने को बल-प्रदान करता है। भला ईश्वर को यह कब सहन हो सकता है कि धर्म्मवाटिका के किसी वृक्ष वा लतादि का कोई अणु-मात्र भी अनादर करे वा उस में टांगा मारने को उद्यत हो।

हां ! यह एक बात है कि जो जिस पुष्प का रसिक हो उसी का भँवरा बना रहै । इस से ईश्वर की प्रसन्नता ही होती है । श्री कृष्ण भगवान ने स्पष्ट ही कहा है कि "मुझे जो जैसे भजता है मैं वैसे ही उसे अपनाता हूं।" बुद्धिमान पुरुष तो चाहे किसी धर्म्मपथ का अनुगामी क्यों न हो मतमतान्तर के झगड़ों से घृणा ही करता है। इसी से एक मुसलमानी कवि "इब्न अमीन" ने कहा है कि :—

"चो अज़ हदे फ़र्मांश बेरूं न अन्द ।
चे अस्हाबे मसजिद् चे अहलेकनिश्त ॥
ख़िरद रा शिगुफ़्त आयद अज़ अद्ले ऊ ।
के ईरा देहद् दोज़ख़ आंरा बेहिश्त ॥"

अनुवाद—प्रभु आज्ञा की सीम तें, जौं नहिं बाहर यार ।
का मस्जिद के सभ्यगन, का मन्दिरसरदार ॥
बुद्धि चकित जौं तासु अस, अहै न्याय की रीति ।
या को पठवै नर्क मों, वाको स्वर्ग सप्रीति ॥

इन्हीं बातों के विचार से हमारे चरित्रनायक सब धर्म्म वालों से मिल कर सब स्थानों से सुन्दर और उपयोगी उपदेश ग्रहण करते थे और इसी से इन की पुस्तकों में श्री गुरुनानकजी, कबीर साहिब, दादूजी, टिकियासाईं तथा मुसलमान महात्माओं और कवियों के वाक्य एवम् गीता रामायणादि अनेक सद्ग्रन्थों की बातें उद्धृत पाई जाती हैं और इन के ग्रन्थ सचमुच मधुमक्षिका की छातों के ही समान हैं जिन के पाठ से केवल कर्णही को नहीं बरन आत्मा को भी मधुचाखन का स्वाद मिलता है।

सच्चे ईश्वरभक्त और महात्मा का यह भी एक लक्षण है कि उन का वाक्य, उन का उपदेश और उन का लेख हृदय-

ग्राही हो और उन के पठनपाठन से मन प्रेमसरोवर में निमग्न होने लगे। इन की रचनाओं में भी ये सब गुण अवश्य पाये जाते हैं और इन के दर्शन तथा इन के सङ्ग वार्तालाप से जो आनन्द प्राप्त होता है वह तो अकथनीय है।

इन के आदर्शमहात्मा होने का अन्य कारणों में से एक बड़ा कारण यह है कि आदिही से ये जहां रहे सत्संग ही के इच्छुक रहे और धर्म्मतत्वान्वेषण ही के अनुराग में में ये सर्वदा सन्तदर्शनाभिलाषी देखे गये। और महात्मा लोग भी योग्यपात्र जान कर इन पर सदा कृपा और स्नेह दरसाते आये। जिन महात्माओं की इन पर विशेष दया रहती आई है और रहा करती है उन के नामों की एक सूची भी अन्यत्र दी गई है। पाठकवृन्द उसे अवश्य पढ़ेंगे। उन के पवित्र नामों के उच्चारणमात्र से विशेष कल्याण की सम्भावना है।

हमारे पाठकवर्ग यह अवश्य जानते होंगे कि " जब द्रवहिं दीनदयाल राघव साधु संगति पाइये "—क्योंकि साधु महात्माओं का दर्शन ईश्वर ही के दर्शन के समान है। श्री गुरु नानक जी ने कहा है कि :—

" नानक साधु प्रभु भेद न भाई। " तब जिस व्यक्ति पर अनेक संत महात्माओं की कृपा हो उस का भला क्या पूछना है? उस का स्वयम् ऐसा महात्मा हो जाना कोई आश्चर्य्य की बात नहीं क्योंकि गुरु साहिब ने ऐसा भी कहा है :—

"पारस में अरु संत में, बड़ो अन्तरो जान।
वह लोहा कंचन करै, करत ये आप समान। "

तभी तो " बिधि हरिहर कबि कोविद बानी। कहत

साधु महिमा सकुचानी " और " सन्त की महिमा बेद न जानहिं " इत्यादि वाक्य पाये जाते हैं ।

और हमारे चरित्रनायक ने भी सत्संगति का निजानुभव जताने के लिये एक स्थान में कहा है कि " संतन के बचनामृत से हिय के भ्रम आपहि आप भगै " । तभी तो सन्तों की कृपा से आप भी ऐसे सन्त हुए । धन्य है सन्तों की महिमा !

सप्तम परिच्छेद ।

नौकरी का समय ।

यह बात ऊपर कही जा चुकी है कि १३अगस्त १८६३ ईस्वी में हमारे चरित्रनायक ३०) मासिक वेतन पर सब इंस्पेक्टर स्कूल नियत हो कर पटना आये । कुछ दिन के बाद १८६४ ई० में इन की तरक्की हुई और ५०) मासिक पर ये शाहाबाद (आरा) भेजे गये । फिर अल्प काल तक पटना, तिर्हुत (वर्तमान मुज़फ्फ़रपुर और दरभंगा) में एवज़ डिप्टी इन्सपेक्टर स्कूल का काम करने पर ज़िला सारन में इन की बदली हुई ।

नौकर होने के दो तीन वर्ष पीछे इन का चित्त मानो फिर चैतन्य हुआ । एकान्त समय में यह सोचने लगे कि " हैं ! १८५८ ई० में मैं क्या होने की चेष्टा करता था, आज क्या हूं !" पूर्व और वर्तमानावस्था का ये मिलान करने लगे । ज्यों २ मिलान करते त्यों २ इन का अप्रौढ़ चित्त

अधिकतर चंचल होता। मन में नाना प्रकार का संकल्प विकल्प उठने लगा; रंग विरंग की तरंगें तरंगित होने लगीं; पुराने ख्यालात इनको अपनी ओर खींचने लगे, वर्तमानावस्था इन की सहचरी रहने की चेष्टा करने लगी। वे कहने लगे "तुम किस भ्रम में भूले हो? निकल चलो, तुम्हारा यहां क्या काम?" यह कहने लगी "मैं तो सब प्रकार से सेवा सुश्रुषा करने को तत्पर हूं, भला मुझे त्यागकर क्यों जाइयेगा?" ये व्यग्रचित्त होने लगे। तब ईश्वरप्रेरणा से कर्तव्य ने इन्हें कान में धीरे से कहा कि "ऐसी शीघ्रता क्यों? अभी जैसा जा रहा है जाने दो, देखो तो प्रभु आगे क्या करते हैं" हरीच्छा से चित्त की चञ्चलता दूर हुई, आगे दिन का ध्यान भी कम हुआ। ईश्वर को आत्म समर्पण कर ये पूर्ववत् अपना काम करने लगे। हां! तौ भी कभी कभी वह तरंग उठाही करती थी जिस से इन का कलेजा कांप जाता था और ये निःशब्द अकेले बैठ कर अश्रुधारा प्रवाहित करते और भारतेन्दु हरिश्चन्द्र प्रकाशित यह सवैया नित्य पढ़ा करते थे—

"बलि सांवरि सूरति मोहनी मूरति आंखिन को तानि आय दिखाओ। चातकि सी मरें प्यासी पड़ीं इन पापिन्ह रूपसुधा निज प्याओ॥ छवि पीत जनेऊ की दामिनी सी करुना करिकै इतहू चमकाओ। इत हूं अब आय कै आनन्द के घन नेह को मेह पिया बरसाओ॥"

यह सवैया ये अबभी अत्यन्त प्रीतिसे पढ़ा करतेहैं और अश्रुधारा प्रवाहित किया करते हैं। प्रभु-बियोग-जनित दुःख से, वा प्रभुप्राप्ति के निमित्त, जिस का हृदय कभी भी सन्तप्त हुआ है वही बड़भागी इन के हृदय की अवस्था अनुभव कर सकता है। धन्य है वह पुरुष जिस का चित्त ईश्वरप्राप्ति के

निमित्त एक निमिष भी व्यग्र हो वा ईश्वर वियोग की पीड़ा से जिस के नेत्रों से एक बूंद भी आंसू टपके।

कर्तव्य के आदेशानुसार ईश्वर में लौ लगाये ये काम करते जाते थे। मार्च १८६७ ई० में इन का ८०) मासिक वेतन हुआ। ये पूर्निया ज़िला के डि० इंस्पेक्टर स्कूल और वहीं के नार्मल स्कूल के हेड् मास्टर नियत हुए। इन के समय में पूर्निया स्कूल ने बड़ी उन्नति की। यह बात पूर्वोक्त डा० फ़ेलन तथा तत्कालीन बंगाल के छोटे लाट सर जार्ज्य कैम्पबेल् आदि के लेखों से विदित होती है। और छोटे लाट के लेख से यह भी भान होता है कि ये स्कूल के छात्रों को "सर्वेइंग्" की भी शिक्षा देते थे और ये उस में भी निपुण थे।

पूर्निया में ये डि० इन्सपेक्टर स्कूल और हेड् मास्टर स्कूल ही नहीं रहे, बरन वहां ये स्वयम् भी एक छात्र बन गये। क्योंकि वहां के कलक्टर वार्गन साहिब की सम्मति से इन्हों ने वहां के नार्मल स्कूल के हेड् पण्डित श्री रामफल शर्म्मा से संस्कृत और हेड् मौलवी अबदुस्समद इलाहाबादी से अर्बी पढ़ना आरम्भ किया। पूर्निया ही में इन्हों ने बंगला भाषा का भी अभ्यास किया।

१८६९ ई० में ये १००) मासिक पर डि० इन्सपेक्टर स्कूल नियत हो कर मुंगेर गये।

एक समय १८७१ वा १८७२ ई० में ये बरियारपुर स्टेशन से बड़हिया जा रहे थे। जमालपुर में एक मुसलमान सैयद् अबदुलग़फ़ूर भी कानपुर जाने के लिये इन्हीं की गाड़ी में आ बैठे। उस गाड़ी में तीसरा कोई नहीं था। इन को श्री लगाये और कंठी बांधे देख कर वें मुसलमान साहिब घृणा से मुंह बनाये हुए थे और ये उस समय मृत्यु

को भूले हुए (जिसे ये प्रायः याद ही रखते थे) नौकरी सम्बन्धी किसी काम के विचार में डूबे हुए थे। जब वह गाड़ी बरहरा स्टेशन से खुली तो सैयद साहिब नमाज़ पढ़ने लगे। यह देख कर मानो इन की नींद टूटी और ये भी अपनी जगह पर खड़े हो कर मन ही मन भगवत्स्मरण करने लगे। जब गाड़ी कजरा स्टेशन के पास पहुंची तो सैयद साहिब की निमाज़ पूरी हुई और ये दोनों यात्री (मुसाफ़िर) अपने २ स्थान में स्थिर हुए। तब सैयद साहिब ने इन से पूछा "साहिब! आप खड़े क्यों थे?" इन्हों ने उत्तर दिया "जनाब! जिस समय तक एक शख्स मेरे माबूद को याद करता रहे उस समय तक मैं क्यों इस नआमत से महरूम रहूं? रहा यह, कि खड़ा क्यों था? तो उस की बात यह है कि माबूद के यादकरनेवाले की ताज़ीम और अदब से।" सैयद साहिब ने फिर पूछा कि "क्या आप भी मालिक को वाहिद (एक) ही समझते हैं?" इन्हों ने कहा "और क्या? वह भी सौ दो सौ है? जिसे हम भगवान परमात्मा कहते हैं, उसी ही को आप अल्लाह खुदा पुकारते हैं।" इतना मुंह से निकलते ही मौलवी साहिब सब घृणाओं को भूल कर झुक २ कर इन्हें आदाब करने लगे और बड़हिया स्टेशन तक दोनों का समय प्रश्नोत्तर में एक क्षण सा व्यतीत हो गया। पछताते हुए दोनों महाशय एक दूसरे से विलग हुए।

कानपुर से मौलवी साहिब ने रेल का सब वृतान्त और अपना नाम ठिकाना लिख कर इन के पास एक पत्र भेजा और साथ ही साथ "सिराजुस्सालकीन्-फ़ी- मिन्हाजुलआबिदीन" की भी एक प्रति भेज दी।

१८७३-७४ ई० में दुकाल विकराकरूप धारण कर विहारमान्त में लोगों को बेहाल करने लगा। सहस्र २ द्रव्य-हीन दुःखिये पेट की ज्वाला से जर्जर होकर काल के गाल में प्रवेश कर सकल जंजाल से विश्राम पानेलगे। उस समय अनेक साहिबबहादुरों के साथ श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद भी दरिद्रों को सहायता प्रदान कर दुर्भिक्ष पीड़ा निवारण का विशेष कार्य्य सम्पादन करने के लिये नियत किये गये। भला दरिद्रों की दुरावस्था देख कर किसी हरिदास का चित्त क्यों नहीं द्रवेगा। ? इसी से दयालुचित्त श्री सीतारामशरण जी इस नूतन कार्य्य में भी कृतकार्य्य हुए और इसी से मुंगेर के तत्कालीन ज्वाएण्ट मजिस्ट्रेट एच० जे० न्युवेरी साहिब ने बड़ी प्रशंसा के साथ लिखा था कि "गोला और गल्ला सम्बन्धी कामों के देखभाल में इन्हों ने वैसा ही साहस प्रदर्शित किया है जैसा कि ये स्कूलों के निरीक्षण में किया करते हैं।" *

१८७५ ई० में इन का मासिकवेतन १५०) हुआ और १८७८ ई० से ये २००) पाने लगे। नौकरी के समय ये सब स्थानों से अधिक मुंगेर ही में रहे। वहां इन को १२ वर्ष रहना पड़ा।

मुंगेर में साधुसेवादि में अधिक व्यय होने से एक बार

---

* The Deputy Inspector Baboo Bhagawan Prasad is a first class business man, gets through a great deal of works, and when he comes to consult or take orders on any point, puts it most clearly and strongly showing how thoroughly he has grasped it himself. He has been much employed by Mr Lockwood on Relief work and has shown himself as energetic an executive officer when dealing with golas and grains as when inspecting schools.

इन्हें द्रव्य के अभाव का कष्ट होगया था। हृदय बहुत व्यथित था। ईश्वर को निज निष्कपट भक्त की पीड़ा कदापि नहीं देखी जाती। वहां के एक मुसलमान मोख़्तार को स्वप्न हुआ। वे प्रातःकाल ही इनके पास कुछ द्रव्य लेकर उपस्थित हुए और उन्हों ने उसे इन्हें भेंट करने की कांक्षा प्रगट की। ये उसे लेने को सम्मत न थे, किन्तु उन के विशेष आग्रह से श्री प्रभु की ओर से सहायता समझ कर उस द्रव्य को इन्हों ने ग्रहण किया। जितने द्रव्य की आवश्यकता थी मोख़्तार साहिब ने उतना ही द्रव्य भेंट भी की।

इन के मुंगेर ही में रहने के समय श्रीयुत भूदेव मुखोपाध्याय बिहार के स्कूलों के इन्सपेक्टर नियत हुए। उन्हीं के समय से बिहार में हिन्दीभाषा का अधिकतर प्रचार हुआ जिस के लिए बिहार उन का सर्वदा बाधित रहेगा। श्री सीतारामशरणभगवानप्रसाद के पिता के समान उन्हों ने भी इन को एक भारी सांसारिक आदमी होने को उत्साह दिलाया। किन्तु जो बातें इन के पिता जी के पक्ष में कही गई हैं वेही बातें भूदेव बाबू के सम्बन्ध में भी कही जा सकती हैं, क्योंकि भूदेव बाबू स्वयम् सांसारिक होने पर और १५) मासिक से नौकरी आरम्भ कर के १५००) तक वेतन पाने पर भी, एक बड़े धार्म्मिक और साधुस्वभावी व्यक्ति थे। पेन्शन् पाने पर काशीवास कर के सर्वदा सत्संग में ही समय व्यतीत करते रहे। धर्म्मानुराग ही के कारण सुविख्यात धर्म्मप्रचारक निखिलशास्त्रनिष्णात श्री १०८ उदासीन स्वामी बालराम शास्त्री जी * की वर्षों सेवा करते रहे।

---

* आप श्रीगुरुनानक सम्प्रदाय के एक उदासी थे। विरक्त होने

१८८१ ई० में बाबू भगवानप्रसाद जी की भागलपुर बदली हुई। जुलाई १८८२ ई०में एक दिन इन्हों ने दानापुर स्टेशन में भागलपुर जाने के लिये टिकट कटाया। परन्तु शीघ्रतावश, अथवा ईश्वरध्यान में निमग्न रहने के कारण अथवा भ्रमवश ये भूल से उलटी गाड़ी में सवार हो गये। अर्थात् भागलपुर जानेवाली गाड़ी में चढ़ने के बदले जो पूर्व से पश्चिम जानेवाली गाड़ी आई आप उसी में जा बैठे। प्रारब्धवश उस दिन एक भयानक घटना उपस्थित हो गई थी, पास में कुछ द्रव्य भी नहीं था, इतने में सर्वशक्तिमान जनरक्षक जगदीश्वर की अद्भुत कृपा ने इन की रक्षा कर की और विलक्षण रीति से इन्हें ३००) का नोट भी मिल गया जिस की इन्हें उस समय बड़ी ही आवश्यकता थी *।

पर आप ने काशी के सुप्रसिद्ध पण्डित श्रीराममिश्र शास्त्री आदि के पास संस्कृताध्ययन किया था। आप संस्कृत के बड़े भारी पण्डित, वेद शास्त्रों के पूरे मर्मज्ञ, सुप्रसिद्ध वक्ता, शास्त्रार्थ में बड़े निपुण और प्रमाण युक्तिपूर्ण धुरंधर संस्कृत के लेखक थे। साधुओं की भारी मण्डली साथ लिये भारतवर्ष के भिन्न २ प्रान्तों में भ्रमण करते धर्म्मोपदेशों से लोगों को कृतार्थ किया करते थे। इन की रचनाओं में "पातञ्जलयोगसूत्र" का हिन्दी भाष्य बहुत ही उत्तम और प्रसिद्ध है। यह पुस्तक इन्हों ने "खड्गविलास प्रेस" बांकीपुर में कुछ काल ठहर कर अपने सामने छपवाई थी। यहीं पर हम को भी आप के चरणों के दर्शन का सौभाग्य हुआ था। हम पर तथा हमारे घर के अन्य लोगों पर आप की विशेष कृपा रहती थी। आप का स्वभाव सरल और स्नेहमय था। शोक की बात है कि १८०७ ई० के कुम्भ के मेले के समय तीर्थराज प्रयाग में आप ने स्वर्ग की यात्रा की।

* इन की रक्षा का इसी प्रकार का ईश्वरीय ढंग देख कर

ईश्वर के चरणकमलों में बाल्यावस्था ही से निष्कपट प्रेम तो था ही अब उस कृपासिंधु की असीम कृपा का बारम्बार प्रभाव देख कर इन का चित करुणामय ईश्वर की भक्ति की ओर और भी अधिक झुका। ये अधिकतर चाव से संतसेवा में प्रवृत्त रहने लगे।

१८८४ ई० में ये गजेटेड् अफसरों में सम्मिलित किए गए और दो सौ से तीन सौ के ग्रेड् में इन की तरक्की हुई। इन की पूरी उन्नति के सुख देखने के अनन्तर १८८५ ई० में इन के पूज्यपाद पिता जी ने स्वर्ग की यात्रा की जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है।

१८८६ ई० में पटना के डि० इन्स्पेक्टर के साथ इन का स्थान परिवर्त्तन किया गया। भागलपुर से पटना बदली होने के पूर्व इन्हों ने बड़े उद्योग से निज-ग्राम-निवासियों की सुशिक्षा और उन्नति के लिये अपने गांव में "ब्राह्मणसभा" और "कायस्थसभा" नियत की थी। प्रथम सभा के व्यय का भार इन्हों ने अपने ऊपर लिया था और दूसरे का कार्य्य चन्दा से सम्पन्न होता था। परन्तु सभाएं चिरस्थाई नहीं हुई। कारण ? लोगों की उदासीनता, और क्या ?

पटना ही रहने के समय इन की सहधर्म्मिणी का १८९० ई० में स्वर्गवास हुआ जिस का वर्णन ऊपर हो चुका है।

१८९१ ई० की मनुष्यगणना के समय इन्हों ने ई०

डिपुटी बख्तप्रसाद साहिब मुंगेर में प्राय: कहा करते थे "अन्धो नाथ धरम रखवार।" जिस पर ये कहते थे :—

"समुझि मोर करतूति कुल, प्रभु महिमा जिय जोय।
जो न भजे सियरामपद, जग विधिवंचित सोय" ॥

पी॰ चैपमैन साहिब असिस्टंट मजिस्ट्रेट पटना के आधीन बड़े परिश्रम से काम करके उन्हें बहुत प्रसन्न किया था। *

पटना में रहने के समय बिहारप्रान्त के इन्स्पेक्टर ऑफ़ स्कूल मार्टिन साहिब एम॰ए॰डी की एक आवश्यकीय आज्ञा पालन करने में और उसी वर्ष ऋण की एक आपदा से मुक्त होने में, जिस के चुकाने के लिये इन्हें ५००) नक़द अनायास † बनारस से प्राप्त हो गया, इन्हों ने

* साहिब ने लिखा था कि "आदि से अन्त तक आप ने जिस योग्यता और परिश्रम से काम किया है, मैं उस की इज़्ज़त करता हूं, मैं चाहता हूं कि मैं आप को पारितोषिक देने के योग्य होता।

"I may take this opportunity of saying that the industry and efficiency with which you have carried out Census work from beginning to end has commanded my respect, and I wish I was in a position to reward you."—E. P. Chapman.

† ऋणपरिशोधन के लिये इन्हें कुछ रुपये की आवश्यकता थी। आप ने कई आदमियों से रुपया मांगा, परन्तु यह समझ कर कि इन के पेन्शन पाने का समय निकट है, रुपया वसूल हो सके या नहीं, कोई रुपया देने पर उद्यत न हुआ। एक दिन सायंकाल में यह इसी चिन्ता में थे कि एक व्यक्ति इन के पास आ कर बोला कि मैं काशी के अमुक मारवाड़ी का नौकर हूं, आप को रुपया की आवश्यकता है यह सुनकर उन्हों ने रुपया भेजा है, आवश्यकता हो तो इसे ले कर अपना काम चलाइये। रुपया का काम तो था ही आप ने रुपया ले लिया और दस्तावेज़ लिखने को कहा। उस व्यक्ति ने कहा कि आज शाम हो गया आप एक हैंडनोट लिख दीजिये, कल्ह अपने मोख़्तार को ला कर दस्तावेज़ लिखवा लूंगा। इन्हों ने हैंड्नोट लिख दिया और वह चल बसा, फिर लौट कर नहीं आया। अनुसन्धान से ज्ञात हुआ कि उस नाम का कोई

ईश्वर की अपार प्रगटकृपा का पुनः परिचय पाया। अपने पर ईश्वर का बारम्बार अनुग्रह देख कर, इन्हों ने उसी दम मन में दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली कि "नौकरी से छुटकारा पाने ही से फिर इधर उधर दृष्टि नहीं करेंगे, सीधे श्री अयोध्या जी पहुंच कर वहीं रामभजन, सरयू-जल-पान और हरि-मूर्ति-दर्शन का जीवनपर्य्यन्त आनन्द उठावेंगे।"

आज्ञापालन की कथा ऐसी है कि एक बार ये स्कूल निरीक्षणार्थ सफ़र में गये थे। और बिहटा रेलवे स्टेशन से कई मील दक्खिन एक इन्स्पेक्शन बंगले में ठहरे हुये थे। उसी समय तत्कालीन शिक्षाविभाग के डाइरेक्टर क्राफ्ट साहिब बांकीपुर आए थे। मार्टिन साहिब ने इन के पास पत्र भेजा कि अमुक तारीख़ को डाइरेक्टर साहिब कलकत्ता चले जायंगे, आप अवश्य आ कर अमुक विषय पर उन से सम्मति ले-लीजिये। पत्र तो ऐसे समय पर भेजा गया था कि यदि अपने नियमितचाल से जाता तो डाइरेक्टर साहिब के प्रस्थान से एक दिन पूर्व इन को हस्तगत हो जाता। किन्तु किसी कारणवश वह पत्र इन्हें ऐसे समय में मिला जब कि बांकीपुर से कलकत्ता जानेवाली डाक गाड़ी खुलने में केवल १५-२० मिनिट की देरी थी। भला इतने समय में बांकीपुर आना कब सम्भव था? किसी कारण से क्यों न हो, अपने अफ़सर की आज्ञापालन में अपने को असमर्थ देख कर इन्हें बड़ा सोच हुआ, इन के चेहरे पर उदासी छा गई, मन दुखित हो गया, अंग शिथिल होने लगा। बाहर से उठ कर

मारवाड़ी काशी में नहीं है। सच तो यह है कि ईश्वर ने किसी सुजन के हृदय में प्रेरणा कर के गुप्तरीति से इन को सहायता कराई।

भीतर बंगले में गए। ऐसे समय में अंग शिथिल होते २ प्रायः आंखें झिपने लगती हैं। इन्हें भी झिपकी आने लगी। पलंग पर लेट गए और निन्द्रादेवी की गोद में जा पड़े। वस्त्र साधारण ही पहनेहुए थे। कुछ देर के बाद–कितनी देर के बाद इस का इन्हें पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ–कान में घंटा बजने का शब्द पड़ने से जो ये चौंक उठे तो क्या देखते हैं कि कचहरी का वस्त्र धारण किए और पाकट में आवश्यकीय कागज़ पत्र लिए आप बांकीपुर रेलवे स्टेशन के "वेटिंग रूम" (मोसाफ़िर घर) में बैठे हुए हैं; और वह घंटा दानापुर से डाक गाड़ी छूटने का बजा था। आप कमरे के बाहर निकल आए, प्लैटफ़ार्म पर डाइरेक्टर साहिब से भेंट और आवश्यकीय विषयों में उन से बातचीत हुई। गाड़ी आने पर उधर साहिब बहादुर कलकत्ता चले और इधर आप उसी कमरे की ओर यह सोचते फिरे कि "अब कहां जायं? अपने डेरे पर बांकीपुर चले जायं, या सफ़र ही में लौट जायं? क्योंकि इन्हों ने दिनचर्य्या में उसी स्थान में ठहरना लिखा था। इसी सोच में बैठे२ इन्हें फिर नींद आ गई और आंखें खुलने पर इन्हों ने अपने को पुनः उसी बंगले में कचहरी का कपड़ा पहिने कागज़ पत्र समेत पाया, और डाइरेक्टर साहिब के साथ जो२ बातें हुई थीं वे सब स्मृतिपट पर अंकित थीं। ईश्वर का ऐसा असीम, अनपेक्षित, अपूर्व और अकथनीय अनुग्रह देखकर इन्हें आनन्द, आश्चर्य्य एवम् महानुराग सब कुछ हुआ। ये उसी दशा में दंडवत् भूतल में पतित हो कर बारम्बार प्रभु के पदाम्बुज में नमस्कार करने लगे और विह्वलचित्त हो कर गदगदकंठ से उस "बिनु कारण कृपाला, दीनदयाला" श्री भगवान का गुणानुवाद गान करने लगे,

नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित हो चली, आन्तरिकहृदय से उसे असंख्य धन्यवाद देने लगे। ऐसे परमानन्द में ये कितने काल निमग्न रहे, यह तो हम नहीं कह सकते।

यह घटना प्रत्यक्ष दिखलाती है कि हमारे चरित्रनायक श्री राम के एक प्यारे भक्त हैं और बाल्यकाल ही से उन्हीं पर आत्मसमर्पण कर संसार में निश्चिन्त कार्य्य करते चले आते हैं। नहीं तो, इन का कार्य्यसाधन करने के लिये प्रभु ऐसा यत्न क्यों करते? यह गप्प नहीं, यह कहानी नहीं, यह पुराने काल की बात नहीं, कि श्री रामकृष्णोपासकों के निन्दक इसे पौराणिक गप्प बताते, दान्त कटकटाते दौड़ेंगे। यह घटना कलह ही की कही जायगी। उसी क्षण इस घटना का राष्ट्र हो गया था और सबही जान गए थे। जाने क्यों नहीं? ईश्वर ने निज भक्ति की महिमा जगत् को जतलाने ही के लिये तो ऐसा किया था जिस में प्रत्यक्ष प्रमाण के ढूंढ़ने वालों का दांत खट्टा हो। हम प्रार्थना करते हैं कि कोरेबकवादी, हिन्दूधर्म्म के यथार्थ तत्त्वों से अनभिज्ञ, ईश्वर-प्रेम के रसास्वाद से वञ्चित जो लोग निज कपोलकल्पित कुतर्कों की बौछार से हिन्दूधर्म्म की धज्जी उड़ाने और वाक्यकुठार से प्रतिमा को खंड२ करने एवम् अवतारादि की समालोचना में "सब्जे" को हेच बनाने में कटिबद्ध हो जाते हैं, इस घटना से अवश्य शिक्षा लाभ करें। वे ज्ञान-चक्षु को अञ्जित कर देखें और कान फाड़ कर सुने कि एक मूर्तिपूजक ही पर, श्रीरामोपासक ही पर ईश्वर ने ऐसी कृपा दिखलाई है। सो भी सतयुग, त्रेता में नहीं, हज़ार दो हज़ार वर्ष पूर्व नहीं, उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त भाग में। आज के कुतार्कियों की आंखों के सामने। फिर इस से बढ़कर और क्या

प्रत्यक्ष प्रमाण होगा ? क्या बाजीगरों की तरह घर२ घूम कर प्रभु प्रमाण दिखलाते फिरेंगे ? हां ! घर २ भी घूमेंगे, घूमते हैं और घूमते आये हैं, पर कोई अपना हृदयमन्दिर तो प्रथम स्वच्छ करे। उसके घर क्या और क्यों जाने लगे जो हृदय-मन्दिर के बाहर ही उन की ओर ज़बान का झाड़ू हिलाता रहे ? वे तो प्रेम के भूखे हैं। उस के घर वे बोलाये जाते हैं जिस की एक वे ही गति हैं " त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च, सखा त्वमेव " और जिस को उन की छवि तथा उन के प्रेम के सिवाय संसार में और कुछ नहीं भाता और यही कहा करता है, " जिन आंखिन में तुव रूप बस्यो उन आंखिन तें अब देखिये का " और-

मो मन तुव प्रेम अस पागा।
सब जगजीव घृणित मोहि लागा ॥ *

अथवा, जो उन के प्रेम में उन्मत्त हो चिल्ला चिल्ला कर ऐसा कहता हो :—

" तुम काह को का समझावति हौ बकबाद बृथा अब कौन करै। गुरु लोगन को भय दीन्हों बिहाय चबाइनहूं ते बलाय डरै। कुलटा बिभिचारिनि बारबधू कोउ चाहे किते-कहुं नांव धरै। हमे प्रेम के नेम निबाहनो है कुलकाज पै गाज भले ही परै ॥ "

श्रीत्रैलोकनाथ भट्टाचार्य्य एम० ए० बी० एल० ने स्वर-चित "विद्यापति" नामक ग्रंथ में लिखा है कि "प्रेम ही जगत का देवता है। भक्ति, भजन, कीर्त्तन, साधन और उपासना

---

* " अन्दरूं बा तो चुनां उन्स गिरफ़्तस्त मरा।
कि मलालम ज़े हमे-ख़ल्क़ ख़ोदा मीआयद"॥—शेख़सादी।

ये सब प्रेम ही के नामान्तर हैं। प्रेम एक महायज्ञ है, सम्पूर्ण स्वार्थ को इस यज्ञानल में आहुति नहीं करने से प्रेमयज्ञ पूर्ण नहीं होता। प्रेमी आत्मविस्मृत निष्काम महा योगी है और संसार की ओर वह दृष्टि नहीं करता। आराध्य देवता के भिन्न वह और किसी ओर ताकता भी नहीं" इत्यादि।

जो व्यक्ति प्रेम का ऐसा भाव समझने को समर्थ होगा वही पूर्वोक्त कवितादि का गूढ़ मर्म हृदयांकित कर सकेगा। हां! इन प्रकारों से जिस का चित्त ईश्वर के प्रेम में मत्त और उन के चरणकमलों में रत रहे, चाहे वह किसी भावना से क्यों न हो, तो उस के घर एक बार जाने को कौन कहे उस के हृदयमन्दिर में तो सर्वव्यापी जगदीश्वर जिस के तीन डेग के बराबर भी त्रिभुवन नहीं, अपना घर ही बना लेता है। तभी तो प्रेमी आदंक सें कहता है कि :—

जो तिहुंलोकहुं नहीं समावत। भक्तन के उर गेह बनावत॥*

और "अर्ज़ो समा कहां तेरि वसअत को पा सके।
मेराहि दिल है वह कि जहां तूं समा सके" ॥

परन्तु ईश्वर की कृपा विना कोई इस प्रकार का प्रेमी भी नहीं हो सकता। जय ईश्वरकृपा की! और जय प्रेमदेव की!!

पाठकवृन्द! यहीं पर एक और अद्भुत घटना का भी हाल सुन लीजिये। "आरा नागरी प्रचारिणी सभा" के कार्य्याध्यक्ष पण्डित सकलनारायण पाण्डेय ने हम से कहा है कि उन्हों ने आरा के सुख्यात पण्डित और वैद्य श्री बाल-

---

* "हर के दर दो जहां नमीगुंजद।
दर दिले दर्दमन्द खाने अस्त" ॥

गोविन्द तिवारी से एक बार सुना था कि जब हमारे चरित्र-नायक आरा में काम करते थे इन का एक लड़का बीमार था और तिवारी जी उस की औषधि करते थे। एक दिन उस की बीमारी की यहां तक वृद्धि हुई कि वह मृतक सा हो गया। उस समय हमारे चरित्रनायक ईश्वर के भजन पूजन में मग्न थे। सब लोग उस बालक के लिये शोकातुर थे और ये भजन में भूले थे। कोई उस बालक को इन के पूजास्थान के पास रख आया। जब ये पूजा से निवृत्त हो कर वहां से चले तो वह लड़का भी स्वस्थ हो गया। वैद्य जी तुरन्त बोलाये गये और उस को सब प्रकार से निरोग पाया।

हम को इस विषय में अनुसन्धान से ज्ञात हुआ है कि वह लड़का इन का औरसपुत्र नहीं था। सहसरामनिवासी एक कायस्थ का पुत्र था। उस का पिता उसे इन के पास कई सप्ताह के लिये छोड़ गया था। एक बार वह अस्वस्थ हुआ। उस के लिये एक हकीम जो बिलग्रामी कहलाते थे नुसख़ा लिख भेजते थे और तिवारी जी कृपापूर्वक उसे नित्य दोनों बेला देख आते थे। एक दिन पूजा समाप्त होने पर इन्हों ने उस रोगी बालक को पूजास्थल के समीप पाया और लोगों से सुना कि मृत्युप्राय होने पर वह बालक वहां रखा गया था।

हम समझते हैं कि जो व्यक्ति उस मृत्युप्राय बालक को वहां रख आया था वह केवल ईश्वर के प्रेरणा ही से रख आया था। ईश्वर को यह मंजूर रहा होगा कि उस बालक का दुखी पिता उस की मृत्यु के कारण असावधानी आदि का दोषारोपण कर के किसी प्रकार एक सच्चे हरि आश्रित की निन्दा नहीं करने पावे। ईश्वर ने उस व्यक्ति

का कल्याण किया तो आप ही, पर उस के साथ साथ हरि-भक्ति और हरिभक्त की भी महिमा लोगों पर प्रगट जनाई।

इस घटना के तीन दिन बाद उस बालक का पिता इन के पास आया और इन्हों ने आग्रहपूर्वक उस बालक को उस के पिता को सौंप दिया क्योंकि उसी समय डा० फ़ैलन की इन के पास चिट्ठी गई कि "तुम्हारी तरक्की का प्रबन्ध सोचा जाता है तुम को शाहाबाद से सब सम्बन्ध तोड़ कर शीघ्र आना होगा, पहिली चिट्ठी में जो मुहर्रिर और चपरासी मिलने की बात लिखी है उसे रद्दी समझो, आठ दस दिन में हुकुम जायगा"। तब से उस लड़के का हाल किसी को कुछ विदित नहीं हुआ। अब ईश्वर और भक्ति की महिमा को हृदय में धारण किये इस ग्रंथ के नायक का आगे का वृत्तान्त श्रवण कीजिये।

१८६३ ई० के १४ अगस्त से १८९३ ई० की ३१वीं अक्तूबर तक ३० वर्ष इन्हों ने सर्कारी काम किया। अफ़-सरों को अपनी कार्य्यदक्षता, योग्यता एवम् सुसम्मति से सदैव प्रसन्न रख ये उन के कृपापात्र बने रहे। सर्कारी रिपोर्टों में बराबर इन की प्रशंसा होती रही। १८९३ ई० के नवेम्बर से ये स्वतंत्र हो कर अपनी पूर्वप्रतिज्ञा के अनु-सार श्री अयोध्यावास का आनन्द उठाते हैं और फ़ैज़ाबाद की सर्कारी ख़ज़ाने से प्रतिमास १४६=) पेन्शन ले कर हरिसेवा और सन्तसेवा में उसे अर्पण किया करते हैं।

३० वर्ष की नौकरी में सिवाय रेआयती छुट्टी के इन्हें बीमारी आदि के कारण कभी छुट्टी लेने की बारी नहीं आयी और न ये सिवाय १९०६ ई० के कभी अस्वस्थ ही हुए जिस का वृत्तान्त आगे वर्णन किया जायगा।

इन के सदा स्वस्थ रहने में सदाचार और ईश्वरकृपा तो मुख्य कारण है ही तथापि एक अपर कारण यह भी है कि खाने पीने और सोने जागने में भी ये बड़े नियम से रहते आते हैं। ऐसे नियमों का लाभदायक सुन्दर गुण और इस की आवश्यकता इन्हों ने भगवद्गीता के १२वें अध्याय की टीका में दिखलाई है।

ये सदैव प्रति दिन नियमपूर्वक चार बार भोजन करते हैं—८ बजे, साढ़े ग्यारह बजे और सवा तीन बजे दिन में एवम् साढ़े आठ बजे रात में। आदि ही से इन्हें खटाई, मिरचाई और मिठाई से रुचि नहीं है। पूरी, कचौड़ी, पलवल और आलू ये बहुत चाव से खाते हैं।

१८६४ ई० से १८९३ ई० तक ये कभी किसी समय एक स्थान में २९ दिन से अधिक नहीं ठहरे। जब काम पर रहे सफ़र में घूमा करते थे और जब रेग्यूलर छुट्टी में रहे, तो काशी, प्रयाग, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों में तीर्थाटन किया करते थे। परन्तु पूरा एक मास कहीं नहीं ठहरते थे।

अष्टम परिच्छेद।

श्री अयोध्यावास।

काम छोड़ने पर श्री सीतारामशरणभगवानप्रसाद ४थी नवेम्बर १८९३ ई० को दस बजे रात की रेलगाड़ी में बांकीपुर से चल कर ५वीं रवि बार को काशी जी में गङ्गा-स्नान कर के श्री गङ्गा, गौरी और विश्वनाथ से अवधवास

की प्रार्थना कर काशी से चल कर सायंकाल में श्री अयोध्या जी पहुंचे। श्री सरयू, श्री नागेश्वर और श्री हनुमान जी से श्री अयोध्या में बसने और श्री सीतारामभजन में तत्पर रहने का इन्हों ने विनय किया।

श्री अयोध्या जी पहुंच कर इन्हों ने श्री १०८ रामचरणदास जी की बड़ी कुटिया प्रमोदबन से अँचला, लंगोटी और कमंडल इत्यादि प्राप्त किये। तभी से इन का गृहस्थाश्रम समाप्त हुआ। श्री अयोध्या जी में वास के समय से आप बराबर रामरजरञ्जित वस्त्र धारण करते हैं और सर्वदा सर्वकाल ईश्वर से यही प्रार्थना किया करते हैं कि "श्री जानकीजीवन ! प्राणनाथ !! करुणानिधे !!! इस दीन के साथ अपनी ऐसी करनी करो, इस की ऐसी न करो।" और ईश्वरभजन, अर्चन, दर्शन और ध्यान में ये कैसे समय व्यतीत करते हैं यह बात इन की बनाई "भावना अष्टयाम" तथा निम्नलिखित दोहों से स्पष्ट विदित होती है:—

"छाड़ि मोह अभिमान सब, सन्तन सों अति दीन।
बसि प्रमोदबन सरयु तट, फिर मन अनत न कीन ॥
नागेश्वर हनुमत कृपा, सरयू कौशलधाम ।
बसि सन्तन मधि दीन रहि, सुमिरत सीताराम ॥"

आदि ही से श्री अयोध्या में इन की कैसी भक्ति है यह बात इसी से प्रगट होगी कि जब ये पहिले पहल अन्य लोगों के सङ्ग वहां गये थे तो श्रीहनुमानमन्दिर के चौकठ से लिपट कर बच्चों की तरह घंटों बुक्का फाड़कर रोते रहे और लोगों के बहुत यत्न करने पर चुप हुए। एवम् जिस समय बांकीपुर की राह से ईष्ट इन्डिया रेल गाड़ी में लगी हुई अवध रुहेलखण्ड (O. R. R.) रेलवे वाली गाड़ी आने जाने लगी तो

मोग़लसराय से बांकीपुर ऐसी गाड़ियां आते पहिलेपहल देख कर और उन पर अवधसूचक O अक्षर लिखा हुआ अवलोकन कर इस विचार से कि उन गाड़ियों पर श्री अयोध्या जी के पदार्थ आये होंगे आप भूमिस्थ हो बारम्बार उन्हें प्रणाम करने लगे। चाहे लोग इन बातों को सुनकर हँसें वा इन्हें पागल समझें, परन्तु ये इन के प्रेमपूर्णहृदय के उद्गार के प्रमाण हैं जिस का यथार्थ अनुभव वेही कर सकते हैं जो इन्हीं के सदृश प्रेमी हों। ईश्वरप्रेम में पागल होना यह साधारण बात नहीं, सब का काम नहीं, यह सच्चे भक्तों का मुख्य लक्षण है और यह उन्हीं के भाग में होता है। श्री नारदभक्तिसूत्र में लिखा है—

"ॐ यज्ज्ञानान् मत्तोभवति, स्तब्धोभवत्यात्मारामोभवति।" अर्थात् जिस को जान कर मनुष्य पागल हो जाता है, स्तब्ध हो जाता है और आत्माराम हो जाता है।

इन के श्री अयोध्यावास करने के पूर्व वहां पर श्री जानकीनवमी का उत्सव नहीं होता था। जब से ये वहां रहने लगे हैं इस उत्सव का भी आनन्द भक्तों को प्रति वर्ष मिला करता है।

इन के धर्मात्मा पिता तथा इन की सौभाग्यवती स्त्री का जीवनविसर्जन तो पहिले ही हो चुका था, परन्तु इन के पेन्शन पाने के समय इन की माता जी जीवित थीं। इन्हों ने बहुत ही चाहा कि वे भी श्री अयोध्या जी चल कर वहीं वास करें और इन्हें मातृचरणसेवा का भी सुख उठाने दें, किन्तु वे इस में सम्मत नहीं हुईं। अतएव ये उन के व्यय के लिए उन के पास घर ही ५१) प्रति मास भेजा करते थे। श्री अयोध्याजी जाने में वे क्यों सम्मत नहीं हुईं सो तो हम

ठीक नहीं कह सकते। एक धर्म्मात्मा पुरुष की पत्नी एवम् ईश्वर के एक परम भक्त की माता को धर्म्म में रुचि न हो यह तो कदापि सम्भव नहीं। तब कदाचित् उन्हों ने निज पति ही के चरणकमलों को हृदय में धारण किये घरही रह कर उन्हीं की मूर्ति के ध्यान में मग्नरहना सर्वोपरि कल्याण-कारक समझा होगा, क्योंकि आर्य्यमहिलाओं का यथार्थ धर्म्म इस से बढ़ कर और कोई नहीं है कि वे सर्वदा निज स्वामी के चरणों के ध्यान में रत रहें, चाहे उन के स्वामी इस लोक में विराजमान हों चाहे स्वर्ग में शोभायमानें हों। इस के सिवाय यह बात तो स्त्री पुरुष सब के लिए है, कि:—

"जो जन रूखे विषयरस, चिकने रामसनेह।
तुलसी ते प्रिय राम के, कानन बसहिं कि गेह॥
सेवत हरिजन भजत हरि, घरहूं नाहि भय हान।
यदि हरि पद मन रम रहे, घर बन एक समान॥"

क्योंकि—"वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां।
गृहेऽपि पञ्चेन्द्रिय-निग्रहस्तपः ॥
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते ।
निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥"

और सुनते भी हैं कि इन की माता घर ही में रह कर भी १८८५ ई० से अन्त समय तक श्री गौरीमहारानी तथा श्री तुलसी जी की पूजा, आरती और परिक्रमा किया करती थीं। १८६५ ई० की शिवरात्रि के दिन इस असार संसार से मुंह मोड़ कर उन्हों ने पतिलोक गमन किया। उन का नाम शिवव्रती देवी था, वे गौरीपूजक थीं और शिवव्रत अर्थात् शिवरात्रि के दिन उन का स्वर्गवास हुआ। क्या इस

नाथ, पूजा और इस घटना से कुछ सम्बन्ध है ? कौन जाने, हो सकता है।

जब तक हमारे चरित्रनायक गृहस्थाश्रम में रहे ये मुकुलित पुष्प के समान रहे और जब तक कचहरिया उज्ज्वल एवम् कालावस्त्र इन के अंगों को ढांके रहा ये श्वेत श्याम घनाच्छादित निशाकर के सदृश पाये गये। इन में कभी सहज सद्गुणसौरभ एवम् हरिपद-प्रेमोत्पादक सदोपदेशकौमुदी का अभाव नहीं था, परन्तु जनसाधारण को उस का पूर्णानन्द नहीं प्राप्त होता था। अधिकांश तो इन्हें भी अन्य डिपुटी बाबुओं के समान एक डिपुटी इन्स्पेक्टर स्कूल मानते थे और जो इन के सद्गुणों और सदाचारों से कुछ परिचित भी हो गये थे उन में से भी दस ही पांच जन उन से लाभ उठा सके थे। कन्तु करुणानिधान,सकलगुणखान, कलिमलअघनाशक, महामोहगजाविदारक, निजजनमानवर्द्धक, सर्वसुखदायक श्री रघुनायक इन की अकृत्रिम प्रीति एवम् अनन्यता से सन्तुष्ट हो कर समय २ पर इन की ओर अपनी अद्भुत कृपा की चपला चमका कर लोगों को चकित और मोहित कर देते थे और उस की ज्योति में इन की सुगुणछबि भी झलक जाया करती थी जिस से लोग अचाम्भित हो जाया करते थे एवम् इन की भक्ति को सराहते और ईश्वर की महिमा बखानते थे। बस और कुछ नहीं। परन्तु जब से आप ने श्री अयोध्या में निवास किया है, आप के सद्गुणसौरभ और सदोपदेशकौमुदी से बहुतसे लोग सुखी हो रहे हैं। इस स्थान में भी आप पर बराबर किसी न किसी प्रकार से उस करुणागार, परमोदार ईश्वर की अपूर्वकृपा का समाचार चतुर्दिक व्याप्त होने से बहुत से पूर्वपरिचित

एवम् अपरिचित महाशय जिन्हें हरिभक्ति और हरिजनों में श्रद्धा और विश्वास है श्री अवधदर्शन के आतिरिक्त इन के दर्शनार्थ भी आया करते हैं। अब इन के सदोपदेशों से लाभ उठाने के लिये बहुत लोग लालसा करते हैं। विजयादशमी, क्रिशमिश तथा अन्यान्य बड़ी२ छुट्टी के दिनों में एवम् रामनवमी और कार्तिक स्नानादि पुण्यसमयों में सैकड़ों पढ़े लिखे और साधारण लोग भी बिहार, फ़ैज़ाबाद, गोरखपुर, बस्ती, बनारस इत्यादि प्रान्तों से इन के आश्रम में इन के दर्शन और उपदेशों से सुख और लाभ उठाने के निमित्त बराबर आया करते हैं और इन का क्षणिक दर्शन पाने से अपने को सौभाग्यवान मानते हैं।

प्रायः प्रति रविवार को श्री अयोध्या के निकटनिवासी हाकिम, अमले, ज़मींदार इन के सत्संग के निमित्त इन के आश्रम पर उपस्थित होते हैं। आप सदैव कोठे पर* रहा करते हैं। सायंकाल साढ़े तीन बजे सत्संग का आनन्द हुआ करता है। नियमित समय के पूर्व जो दर्शनाभिलाषी जाते हैं उन्हें एक मोटा कार्ड दिखा दिया जाता है जिस पर मोटे अक्षरों में "साढ़े तीन बजे" छपा हुआ है। ऐसा करने का कारण यह है कि लोगों के सङ्ग सदा सम्भाषण में लगे रहने से ईश्वरभजन और ईश्वरसेवा में बाधा पड़ती है। समय नियत कर देने से सब काम ठीक रीति से चलता है।

सत्संग प्रायः निम्नलिखितविषयों पर हुआ करता है:-

सुरति (भगवन्नामस्मरण); श्री सीतारामचरणप्रीति; श्री सरयू अयोध्यामाहात्म्य; वासनापरित्याग; मृत्युस्मरण; इन्द्रियदमन; अल्पभाषण; एकान्तवास; भगवान के गुण, स्वभाव तथा

---

* कोठे पर रहना इन्हें आदिही से भाता है।

कृपा का मनन और चिन्तन; श्री रामायण, भक्तमाल और जानकीस्तवराज का पाठमाहात्म्य; विषयों से बचना; वैराग्य; कुसंगतित्याग ; परोपकार ; दया, क्षमादि ; मान्य पुरुषों का सम्मान ; सत्संगमाहात्म्य ; परदोष न देखना ; ब्रह्ममुहूर्त और आधीरात के समय को काम में लाना ; शरीररक्षा ; मादकों से दूर रहना ; समय व्यर्थ न खोना ; ज्ञान, भक्ति और कर्म्मकाण्ड इन तीनों की खिचड़ी बना कर प्रश्न न करना, इत्यादि, इत्यादि ।

इन के दर्शन और उपदेशों से लोगों का प्रायः कल्याण हुआ करता है। इस का एक उदाहरण नीचे देखिये ।

एक समय श्री सीतामढ़ी बुलाकीपुरनिवासी बाबू बलदेवनारायण सिंह जो गया में वकालत करते हैं १९०० ई० के लगभग श्री अयोध्या जी तीर्थाटन करने गये थे। वकील साहिब साधारणधर्म्मावलम्बी अर्थात स्मार्त थे । आप ने वहां के पण्डों से पूछा कि "यहां पर कोई ऐसे भी साधु हैं जो रुपया नहीं चाहते ?" पण्डों ने उत्तर दिया "हां ! प्रति मास डेढ़सौ पेन्शन पाने के कारण श्री सीतारामशरण भगवानप्रसाद जी को किसी से रुपया लेने की आवश्यकता नहीं है "। बलदेव बाबू श्री वैष्णवधर्म्मसम्बन्धी बारह तेरह प्रश्न अपने मन में गढ़ कर हमारे चरित्रनायक के दर्शनार्थ इन के स्थान पर उपस्थित हुए। निज दास को बड़ाई देनेवाले प्रभु ने उन प्रश्नों तथा उन के उत्तरों को हमारे चरित्रनायक के हृदय में पहिले ही झलका दिया। वकील साहिब के बिना पूछे ही इन्हों ने हरिकृपा से स्वयम् एक २ कर के सब प्रश्नों तथा उन के उत्तरों को कह सुनाया। इस घटना का उन पर ऐसा प्रभाव हुआ कि उन्हों ने श्रीसीता-

राम जी की उपासना की अपने मन में दृढ़ प्रतिज्ञा की और अयोध्या से लौट आने पर उन्हों ने अपने गुरु स्वामी से "भगवतसंस्कार" लिया।

अब उन का आचार व्यवहार, सोच विचार और रंग ढंग कैसा उत्तम शुद्ध और पवित्र है यह बात वे ही जानते हैं जिन्हें उन से मिलने का और उन के साथ बर्तने का अवसर मिलता है। साधुसेवा एवम् श्री सरयू और अयोध्या में उन की बड़ी श्रद्धा है। सुअवसरों पर आप प्रायः वहां जाया करते हैं। नित्य भजन, स्मरण, जप आदि कामों में समय बिताते हैं। श्रीअयोध्या जी प्रमोदबन में उन्हों ने इस ग्रंथ के नायक के नाम पर "रूपकलाकुंज" नाम का एक सुन्दर भवन बनवाया है और सर्वसाधारण के उपकारार्थ उस में एक धर्म्म-पुस्तकालय बनाने का विचार कर रहे हैं। इस ग्रंथ के नायक के कईएक ग्रंथों को भी उन्हों ने निज व्यय से मुद्रित कराया है।

आप को कोई लड़का नहीं है किन्तु लड़कियां हैं। आप के छोटे सहोदर बाबू लक्ष्मीनारायण कलकत्ता हाइकोर्ट के एक प्रसिद्ध वकील हैं।

यों तो हमारे चरित्रनायक के पास जो जाता है वही इन की कृपादृष्टि का भागी होता है, तथापि बहुत से भाग्य-वान पुरुष ऐसे भी हैं जिन पर इन की विशेष कृपा हुई है और रहती है। उन लोगों की सूची अन्यत्र दी गई है।

नवम परिच्छेद ।

लोक परलोक बनाना ।

लोग कहते हैं कि:—

चाहत उभय, सुखस्वर्ग, तुछ संसारसुख, सम्भव कहां ।
जानो इसे शुधभरम, पागलपन अरू दुष्कर महा ॥ *

निस्सन्देह दोनों में कुछ ऐसा ही विरोध है कि दोनों का साथ साथ साधन होना कठिन दीखता है, किन्तु एकदम असम्भव नहीं। हमारा शास्त्र ऐसा सर्वथा निराशसूचक वाक्य नहीं कहता । परन्तु ईश्वरप्रेमरत उस प्रकार का व्यक्ति होना चाहिये । देखिये पूर्ववर्णित घटनाओं से स्पष्ट विदित है कि हमारे चरित्रनायक ने दीन दुनियां दोनों को साथ साथ सम्हाला । इन्हों ने ३० वर्ष इस सावधानी और चमत्कारी से नौकरी की, कि इन्सपेक्टर स्कूल से ले कर इस प्रान्त के छोटे लाट तक, जिन जिन अफ़सरों को इन के कामों के निरीक्षण का अवसर मिला— चाहे वह शिक्षासम्बन्धी रहा हो, चाहे दुर्भिक्षसम्बन्धी, चाहे मनुष्यगणनासम्बन्धी—सब लोग इन की कार्य्यनिपुणता की प्रशंसा ही करते आये। प्रशंसा ही क्यों ? सर्वदा समयानुसार इन के वेतन की वृद्धि कर इन की योग्यता स्वीकार करते आये और इसी कार्य्यदक्षता का फल है कि आज भी ये सरकार से १४६≈) प्रति मास घर बैठे पा कर संतसेवा और हरिसेवा में उसे व्यय किया करते हैं । परन्तु

---

* "दीन मीख़ाही वो हम दुनियाय दूं ।
ईं ख़्यालस्त वो महालस्त वो जनूं ॥

लौकिक कामों के करने में ये परलोक की चिन्ता एकदम भूल नहीं बैठे थे। इन्हों ने सांसारिक सब कामों को किया, किन्तु ये विषयों में लिप्त नहीं हुए। संसार साधते हुए इन्हों ने मन ईश्वर ही की ओर रखा। " रसखान गोविन्दहि यों भजिए जिमि नागरि को चित गागरि में " यही इन का सर्वदा सिद्धान्त रहा। अपनी रचनाओं में भी इन्हों ने प्रायः इसी की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। आज कल अधिकांश जन संसारसुख ही को मुख्य मान कर अहर्निश उसी की चिन्ता में निमग्न और उसी के लिए ही यत्नवान और अस्तव्यस्त रहते हैं। सांसारिक विभवों में भूल कर मृत्यु को भी एकदम भूल बैठते हैं। ऐसे ही लोगों को लक्ष्य कर के महानुभावों ने कहा है।

" आदित्यस्यगतागतैर हरहः संक्षीयते जीवितं।
व्यापारैर्बहुकार्य्यभार गुरुभिः कालो न विज्ञायते॥
दृष्ट्वाजन्मजरा विपत्तिमरणं त्रासश्चनोत्पद्यते।
पीत्वा मोहमयींप्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥ "

(श्रीभर्तृहरि।)

इस से भी स्पष्ट देखिये—

" परिजन भाई बाप, देखत देखत नित मरत।
अमर मोहवश आप, यातें अचरज कौन बड़॥ "

(श्रीहंसकलाजी।)

मक़रबों में देखते हैं अपनि इन आंखों से रोज़।
यह बिरादर, यह पिदर, यह ख़ेश, यह फ़र्ज़न्द हैं॥
तौ भी रानाई से ठोकर मार कर चलते हैं हम।
यह समझते हैं नहीं हम ख़ाक के पैवन्द है॥ (सौदा)

परन्तु बाल्यकाल ही से सुन्दर सत्संग के कारण हमारे

चरित्रनायक को यह बात स्मरण रही "आज कि काल चले मन मूरख तेरेइ देखत केते गए हैं। सुन्दर क्यों नहि राम सम्हारत या जग में कहु कौन रहे हैं?" जिसे यह बात हृदयांकित हो गई, भला कहिये तो वह कभी विषयासक्त कैसे हो सकता है? वह तो कमलपत्र की न्याय विषय-तड़ाग (संसार) में रह कर भी वासनारूपी जल को अपने हृदय पर ठहरने नहीं देगा। सत्संग के प्रताप से आदि ही से इन की ऐसी धारणा हुई और उसी समय इन्हों ने मन को ईश्वर के पदपंकज में अर्पण किया। इन्हों ने भोजनादि को भी विशेष २ रोगों का भेखज ही मान रखा। अन्य लोगों के समान, श्री भर्तृहरिजी के वाक्यानुसार*, मूर्खतावश उन्हें विशेष सुख का कारण नहीं माना। ईश्वर के चरण-कमलों में निष्कपट एवम् निष्काम आत्मसमर्पण का फल यह हुआ कि आदि ही से करुणाधाम शोभाभिराम श्री सीताराम की कृपा इन पर प्रदर्शित होने लगी जिस का परिचय पाठकों को ऊपर मिल चुका है। श्री अयोध्यावास काल में भी भक्तवत्सल भगवान इन पर कई बार प्रत्यक्षरूप से कृपा दिखला २ कर निज प्रेम तथा भक्ति में इन का चित्त नित्य २ अधिकतर अटल करते आये और इसी मिस से कलिकाल में भी विषयासक्तों को उपदेश और चितावनी देते रहे। चाहे कोई चेत करे वा ईश्वरविमुख अविश्वासी रह

---

* तृषाशुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभिः।
क्षुधार्तः सन् शालीन् कवलयति शाकादि वलितान्॥
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरं माश्लिष्यति वधूं।
प्रतीकारो व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः॥

(श्री भर्तृहरि।)

कर कलिकाल का खिलौना बना रहे और छोटी नौका के समान भवसागर में विषयवासना की प्रबल लहरों का थपेड़ा खाते अपनी अमूल्य मनुष्यकाया और, मनुष्यजीवनी को नष्ट कराता रहे।

पाठकवृन्द देख चुके हैं कि नौकरी के समय जब कभी इन पर किसी प्रकार की कोई कठिनाई आई है श्री सीताराम ने अपनी असीम करुणा से इन का किसी न किसी रीति से तुरन्त उबार किया है। अब भी धर्म्मकार्य्यों में अधिक व्यय के कारण जब २ ऋण वा द्रव्याभाव का कष्ट इन को दुख देता है, ये अपने तकिया वा बिछावन के नीचे यथावश्यक द्रव्य रखा हुआ पाते हैं। कुछ दिन हुआ कि एक दिन एक अपरिचित व्यक्ति ने इन के पास आ कर और इन्हें एक लिफ़ाफ़ा देकर कहा कि "आप से कुछ बातें करनी हैं, आप इसे अपने पास रखिये, मैं अभी लघुशंका से निवृत्त हो कर आप के समीप आता हूं।" इन्हों ने उस लिफ़ाफ़े को ले लिया और वह व्यक्ति जो लघुशंका करने गया फिर नहीं लौटा। यह महाराज उस लिफ़ाफ़े को छः दिनों तक अपनी कुटी में रखे रहे। तब इन्हें स्वप्न हुआ कि "वह लिफ़ाफ़ा तुम्हारे ही काम का है, उसे खोल कर उस के भीतर के पदार्थ से अपना कार्य्य साधन करो।" इन्हों ने ईश्वर की कृपा जान कर उस लिफ़ाफ़े को जो खोला तो उस में ४५०) के नोट पाये गये।

इधर कुछ दिनों से गुप्त रीति से द्रव्य की भारी सहायता नहीं मिली है, परन्तु निज प्रेमियों के द्वारा ईश्वर यथावश्यक प्रत्यक्ष सहायता किया करते हैं।

संवत् १९६३ में मार्गशीर्ष के मध्य से मधुमास पर्य्यन्त

ये अस्वस्थ रहे। व्यय के लिए पास में टका भी नहीं था। एक बीमारी, दूसरे खर्च। इन की सेवा और चिकित्सा के निमित्त ईश्वर ने कई एक सज्जनों के हृदय में प्रेरणा की। क्योंकि भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तों को कभी नहीं भूल सकते। ईश्वर की कृपा और प्रेरणा से छपरा के सुप्रसिद्ध वकील बाबू दुर्गाप्रसाद जी, रूसी की दुलहिन जी, श्रीपुर की ठकुराइन जी तथा फैज़ाबाद के आनरेरी मजिस्ट्रेट और महाजन बाबू रामरघुवीर जी ने वैद्य हकीम तथा व्यय का यथोचित प्रबन्ध कर दिया। सं० १९६४ (=१९०७ ई०) की श्रीरामनवमी के पूर्व ही ये पूर्णरूप से भले चंगे हो गये। हां! कुछ काल तक थोड़ी कमज़ोरी अवश्य रही, पर उस का कारण अधिकतर वृद्धावस्था ही था। वृद्धावस्था के कारण अब इन से बहुत परिश्रम भी नहीं हो सकता। इसी से हाल ही में इन्हों ने निम्नोद्धृत * छपा कार्ड भी वितरण कराया है।

आधुनिक बुद्धि के आगार जिन के नेत्रों में नई रोशनी की चमक से चकचौंध सा हो रहा है चाहे इन की जीवनी-सम्बन्धी घटनाओं का जो कुछ भाव निकालें, किन्तु हरिजन

---

* "श्रीअयोध्यासरयूभ्यांनमः"

"इस दीन से अब परिश्रम नहीं हो सकता; इसलिये अब कोई प्रेमी श्री हनुमन्त वा सन्त की सेवा के निमित्त, अथवा मेरे लिये रुपया न भेजें; यदि भेजेंगे तो अस्वीकार किया जायगा, किसी प्रकार से नहीं रख लिया जायगा। आप छपा कर के यह बात अपने प्रेमियों पर विदित कर दीजिये कि द्रव्य न भेजा करें।

श्री अयोध्या जी
प्रमोदवन ५-१-०८
रूपकला कुंज। } दीन श्रीसीतारामशरण भगवानप्रसाद।

तो इन सब बातों को केवल भगवान ही की अलभ्य कृपा मानेंगे, दूसरी बात स्वप्न में भी उन के मन में न आवेगी।

इन घटनाओंसे स्पष्ट विदित है कि इस कलिकाल में भी अनन्य भक्तों और सच्चे प्रेमियों की सहायता एवम् हितसाधन में करुणामय ईश्वर सर्वदा उद्यत रहते हैं। अतएव यदि कोई सचमुच अपना कल्याण चाहता है और इस मनुष्यजीवन को सफल करने की इच्छा रखता है तो निरावलम्बों के अवलम्ब, जगदाधार, जगत्नियन्ता, जगदीश्वर पर भरोसा कर के शुद्ध हृदय से उन के चरणकमलों का चंचरीक बनकर उन्हीं में अपना तन मन सर्वस्व अर्पण कर उन्हीं की भक्ति के रसास्वादन का आनन्द उठाता रहे, उन्हीं के भजन में रत रहे। सांसारिक कार्यों का साधन करते हुये भी वह लोक परलोक दोनों में सुख भोगने को समर्थ होगा। ईश्वर निस्सन्देह उस के सब कामों को सँवार कर उस का अवश्य कल्याण करेंगे। महात्माओं ने यही सिद्धान्त किया है और हमारे चरित्रनायक की जीवनी भी यही सिखाती है।

दशम परिच्छेद।

शील स्वभाव।

हम अपने चरित्रनायक के शील स्वभाव के विषय में कुछ अधिक लिखना व्यर्थ समझते हैं, क्योंकि साधु महात्माओं का स्वभाव सहज ही सरल और सुखद होता है। आप का स्वभाव भी बहुत प्रशंसनीय है और जैसा आज विरक्त होने पर है वैसाही गृहस्थाश्रम में भी था। हां! उस समय इन्हें

रोष शीघ्र हो जाया करता था, किन्तु वह नाममात्र ही को होता था और ये तुरन्त शान्त भी हो जाया करते थे। मूर्ख क्रोधियों के समान उसी के वशीभूत नहीं रहते और न क्रोध में कोई अनुचित कार्य्य ही कर बैठते थे। रोष भी किसी कारण से ईश्वरभजन और अर्चन अथवा साधुसेवा में बाधा पड़ने ही से होता था, अन्यथा नहीं।

ये ब्राह्मणों का भी बड़ा ही आदर सम्मान करते हैं। इन्हों ने आज तक किसी ब्राह्मण को रसोई बनाने अथवा कोई अन्य काम करने के निमित्त अपने यहां कभी नौकर नहीं रखा। नौकरी के समय बांकीपुर में आरा ज़िला के कोइलवर-गांव-निकटवर्ती किसी गांव के रहनेवाले एक जन रामरत्न पाण्डेय इन के अर्दलीचपरासी थे। ये सर्वदा उन्हें देखते ही दोनों हाथ जोड़ कर उन को प्रणाम करते थे, उन का नाम धर कर कभी नहीं पुकारते थे और उन्हें बाबा जी कहा करते थे। अपने पास से उन्हें अन्नदाना देते थे और उन से निज का कभी कोई काम नहीं लेते थे। यदि उन की पाकशाला में कभी भोजन करने का संयोग आ जाता था, तो पहिले उन्हें भोजन करा कर तब प्रसादस्वरूप स्वयम् खाते थे।

कितने हिन्दू अफ़सर वा मालिक अपने ब्राह्मण अर्दली वा निज के ब्राह्मणनौकरों के साथ ऐसा व्यवहार करते हैं? साधारण कामों को कौन कहे उन से अयोग्य और घृणित कार्य्य कराने में भी लोग संकोच नहीं करते। परन्तु निम्नलिखित वाक्य जो श्री तुलसीदास जी ने श्री रामायण में "नवधाभक्ति" के वर्णन में तथा अन्यान्य स्थानों में श्री प्रभु के मुख से कहलवाया है, इन्हें सर्वदा स्मरण रहते आये

हैं और ये उन्हीं के अनुसार कार्य्यवर्ती होने में निज कल्याण समझते आते हैं। सांसारिक सुख ने इन्हें कभी मदान्ध नहीं किया।

पूर्वोक्त काव्य ये हैं। यथा :—

(१) "प्रथमहिं बिप्रचरण अति प्रीती"

(२) "पुन्य एक जग महँ नहिं दूजा।
मन बच कर्म बिप्रपद पूजा।"

३) "मन बच कर्म कपट तजी, जो कर भूसुर सेव।
बिष्णु समेत बिरंचि शिव, बस ताके सब देव॥"

(४) "मंगलमूल बिप्र परितोषू" इत्यादि।

हिन्दूधर्म्म में ब्राह्मण का सम्मान एक आवश्यकीय कार्य्य है। वह हिन्दू कैसा जिस के हृदय में ब्राह्मण को उच्च-स्थान न मिले ?

दूसरों के सुख आराम का इन्हें सर्वदा ध्यान रहा करता है। इन के गृहस्थाश्रम में रहने के समय जब कभी इन का कोई भृत्य निद्रावस्था में ऊष्णता अथवा किसी अन्य कारण से बेचैन हो कर इधर उधर करवटें लेता था और ये जागे रहते थे और उस की दशा देख पाते थे तो उस के समीप जा कर धीरे २ पंखा डोलाने लगते थे जिस में कि वह सुखपूर्वक सो जाय।

इन का स्वभाव उस समय भी ऐसा सर्वजनप्रिय था कि औरों को कौन कहे इन के अंगरेज़ अफ़सर भी इन के स्वभाव की सदैव प्रशंसा किया करते थे। वार्गनसाहिब पुर्निया के कलक्टर ने एक बार लिखा था कि "ये शिष्टाचार के लिये प्रसिद्ध हैं" * मुंगेर के मजिस्ट्रेट सी०ए०सेमुएल्स

---

* ......Who is remarkable for his courteous manner.

साहिब ने लिखा था कि 'मैं स्वयम् इन का बहुत सम्मान करता हूं; मेरी समझ में जितने सच्चे और निष्कपट देशीय लोगों से मुझे भेंट हुई है, उन में से एक यही हैं" * रेव-रेन्ड जी० वी० आर्चर भागलपुर के पाँदड़ी ने लिखा था कि "ये बड़े ही धार्म्मिक पुरुष हैं।" †

ये आदि ही से मिलनसार हैं। अब भी नियत समय पर जो कोई जाता है उस से ये प्रीतिपूर्वक मिलते हैं और किसी के पत्र भेजने पर आवश्यक्तानुसार उत्तर भी भेजते हैं जिस से भी स्नेह टपकता है। इन के कार्डों पर जो श्लोकादि छपे रहते हैं उन से भी भक्तिभाव प्रकटित होता है। वे भी पाठकों के अवलोकनार्थ यहां पर उद्धृत कर दिये जाते हैं। यथा आदि में :—

"॥ श्री ॥"

"श्रीगुरवे हनुमते नमः"।

"नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः"

॥ "श्री सरयू अयोध्या मिथिलादेवीभ्यो नमः"।

"हनुमान (१) अंजनिसुत सन्ता। (२)
वायुपुत्र महाबलवन्ता ॥ (३)
रामदूत (४) अर्जुनजयदाता।
पिङ्गललोचन सन्तसुत्राता ॥ (५)
महावीरविक्रमीमहाना। (६)
जलधिउलंघन (७) अनिमतिवाना ॥ (८)
सीताशोचविमोचनवीरा। (९)

---

* I entertain a very high opinion of his integrity and ability as well as considerable regard for him personally. He is to my mind one of the most gennuine guileless native I have ever met. † He is a most religious man.

अक्षयकुमारदलनरणधीरा ॥ (१०)
लखनप्राणदातासुखकारी । (११)
जय कपीशदशमुखमदहारी ॥ (१२)"

[इन चौपाइयों में श्री हनुमान जी के १२ नामें वर्णन किये गये हैं]

इस के अनन्तर "जय जय श्री जानकीजीवन की" छपा रहता है । अनन्तर जिस के पास वे कार्ड भेजे जाते हैं उस के लिये छपा हुआ है : —

"शीलसिंधु प्रियमीत वर, किरपा का धनवाद ।"

और अन्त में आशीर्वादसूचक यह दोहा छपा देखा जाता है ।

"जासु नाम भवभेषज, हरन घोर त्रयशूल ।
सो कृपाल मोहि तोहि पर, रहै सदाअनुकूल ॥"

इन के पत्रों में ऐसा भी छपा हुआ पाया जाता है—

"श्री सीताराम ॥"
"ओं नमो भगवते हनुमते श्री रामदूताय ।
श्री मते रामानन्दाये नमः ॥ "

और किसी पुराने२ कार्ड पर ऐसा छपाहुआ देखा जाता है : -

"श्री सीताराम ।
श्री हनुमते नमः ।
रामहिं सुमिरिय, सेइय रामहिं ।
गाइय सुनिय, रामगुनग्रामहिं ॥"
"मंगलमूल विप्रपरितोषू ।"
(सदा सत्संग)

ऐसे कार्ड जिन के पास जाते हैं मानो उन्हें ईश्वर-भजन में सावधान करने के लिये भेजे जाते हैं । इन कार्डों की दूसरी ओर " नमो नमो ब्राह्मणेभ्यो " आदि छपा है ।

आप अपने कृपापात्रों से सदा यही कहते हैं और उन्हें यही उपदेश देते हैं कि अपने को करुणाधाम श्री महाराज रामचन्द्र के सम्मुख जान अपने दुःख सुख मनोभाव की व्याख्या करनी यही सब से श्रेष्ठ पूजा है। और जब आप स्वयम् ध्यान में मग्न हो श्री प्रभु के सम्मुख होते हैं तो लोगों ने इन को श्री महाराज से प्रत्यक्ष बातें करते सुना है। उस समय इन की प्रेममयीमूर्त्ति देखने ही योग्य और प्रेमालाप सुनने ही योग्य होता है। सब प्रकार आत्मविस्मृत हो कर आप ज़ोर२ से बातें करने लगते हैं। धन्य है भक्ति की महिमा!

एक बार सम्वत् १९१७ में फागुन के अमावस्या से चैत्र कृष्ण दशमी तक छपरा ज़िला स्कूल के पास श्री रामध्यानदास जी के श्री सीताराम के मन्दिर में श्री उक्त महन्थ जी एवम् मु० रघुवरदयाल और मु० शिवराजप्रसाद हथुआराज के मुख़तारों के प्रबन्ध और यत्न से श्री रामरास का उत्सव हुआ था। इस ग्रंथनायक के पिता मु० तपस्वीराम जी ने भी उस में बहुत उत्साह प्रदर्शित किया था। इन को भी श्री रामरास दर्शन के लिये बोलाया था और ये नौकरी से छुट्टी लेकर आये थे। रास बड़ी धूमधाम से हुआ था। उस रास में साकेतवासिनी प्रधान १६ सखियों की प्रतिमूर्तियां सम्मिलित थीं। एक दिन सुखद रासहुलास के समय ये ऐसे विमोहित हुये कि चट उठ कर सखियों के साथ नृत्य करने लगे और प्रेमानन्दरस में निमग्न हो कर बेसुधि भूतल पर गिर पड़े। लोग उठा कर इन्हें वहां से ले गये और बहुत देर के बाद ये पुनः चैतन्य हुये।

श्री अयोध्या में जब सम्वत् १९६४ में पांच दिनों तक

रामलीला हुई थी* उस समय भी "नारदमोह" लीला के दिन एवम् "श्रीरामकलेवा" लीला में जो एकबार इन के एक मित्र मुन्शी अम्बेसहाय † के स्थान पर हुई थी, ये युगल सरकार की तत्कालीन किसी विशेष कृपा से आनन्दरस में मग्न हो नृत्य करने लगे थे और इन की आंखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी थी। हम ऊपर ही कह चुके हैं कि प्रेमोद्गार से ऐसा आत्मविस्मृत होना सब के भाग्य में नहीं होता। केवल सच्चे भक्तों ही के भाग्य में होता है और सो भी जब ईश्वर की स्वयम् कृपा हो।

गृहस्थाश्रम परित्याग के समय इन्हों ने पैतृक सम्पत्ति का अपना हिस्सा श्री ठाकुर जी (श्री सीताराम जी) के नाम अर्पण कर दानपत्र लिख दिया, और उस का प्रबन्धकर्त्ता अपने गुरुस्थान के महन्त को नियत कर सरकारी रजिस्टर में नाम चढ़वा दिया। भाइयों का हिस्सा भाइयों के अधिकार में रहा।

एकादश परिच्छेद।

रचना।

पुस्तकरचना की ओर हमारे चरित्रनायक का छात्रावस्था ही से ध्यान रहा। बरन यह बात पाठकों को विदित हो चुकी है कि केवल इन की छात्रावस्था की रचना ही देख कर डा० फ़ैलन साहिब ने बिना मांगे शिक्षाविभाग में इन्हें नौकरी दी थी। उस पुस्तक का नाम था—

* पृष्ठ २२ देखिये।

† मित्रों की सूची में इन का वृत्तान्त देखिये।

(१) " तन मन की स्वच्छता "–१८६३ ई० में एन्ट्रेन्स क्लास में पढ़ने के समय इन्हों ने उस पुस्तक की रचना की थी। विषय तो नाम ही से प्रगटित है, कहने की कोई आवश्यकता नहीं। पुस्तक हिन्दीभाषा में थी। किन्तु उसी साल में इन्स्पेक्टर साहिब के आज्ञानुसार इन्हों ने उस पुस्तक को उर्दूभाषा में उलथा कर के उस अनुवाद का नाम "तहारते ज़ाहिर वो बातिन" रक्खा।

(२-३) "तुहफ़ेतुलशायक़ीन्" और "उर्दू रोमन रीडर्स"– पुर्निया में रहने के समय इन्हों ने इन पुस्तकों की तथा अन्यान्य पुस्तकों की रचना की थी जो तत्कालीन विद्यार्थियों के लिये उपयोगी थीं।

(४) " शरीरपालन " "हिफ़्ज़े सेहत की उमदः तदबीरें" } पूर्वोक्त बाबू भूदेव मुखोपाध्याय सी. आई. ई. की आज्ञा से इन्हों ने बंगभाषा की एक पुस्तक का हिन्दी में अनुवाद कर के उस का नाम "शरीरपालन" रक्खा और उस के उर्दू अनुवाद का " हिफ़्ज़े सेहत की उमदः तदबीरें " नाम रक्खा। क्राफ्ट साहिब बहादुर डाइरेक्टर की आज्ञा से बिहारप्रान्त के मिडिल स्कूलों में इन पुस्तकों का बहुत दिनों तक प्रचार रहा। " हिफ़्ज़े सेहत " आज कल भी कहीं २ कोर्स में है। श्री मद्भगवद्गीता की टीका में भी अभ्यास के प्रकरण में इन्हों ने शरीरपालन के विषय में बहुत कुछ लिखा है।

(५) "भागवतगुटका"–मु० शिवनारायण लाल गिरहिंदा शेख़पुरानिवासी ने १८९७ ई० में इसे छपवा कर प्रकाशित किया था। इस के पूर्वार्द्ध में भगवन्नामकीर्त्तन का प्रकरण संक्षेप से दिया गया है और उत्तरार्द्ध में भागवतसुखद कई

एक अन्यान्य विषयों का उल्लेख हुआ है। पुस्तक के प्रारम्भ में श्री रामरसरङ्गमणि* कृत रोला छन्दों में ईश्वरप्रार्थना है। फिर दो पृष्ठ के बाद प्रकाशकलिखित भूमिका है जिस में लिखा है कि "होनहार सुहृदवर्ग तथा नवीन विरक्त वैष्णवों का धन और भागवतमात्र की प्रसन्नता का कारण तो यह है ही, परन्तु सब श्रद्धावन्त पाठकों, विशेष कर के अपने वैष्णव कायस्थ विद्यार्थियों के हितार्थ, इस को यह बालहितचिन्तक छपवा कर प्रकाश करता है"। फिर ग्रंथ-कर्त्ता-लिखित छन्दोबद्ध भूमिका है।

दोहा-"जय २ श्री गुरुदेव जू, जय सियराम सुनाम।
जय हनुमत शिव जपत जे, सादर सीताराम ॥
श्री गुरु युगलअनन्य पद, प्रेमपयोधि सुजान।
श्री जानकिवरशरण जू, भक्तिविवेकनिधान ॥
जन तिन को उपदेश लहि, आज्ञा आशिर्वाद।
सीस नाय गायो मुदित, यह भगवानप्रसाद ॥
शिवनारायणलालजू, सुजन उदार विनीत।
छपवायो यह भागवत, सुखद सरल मम गीत ॥
कहैं सुनैं सिय राम यश, जपैं सदा प्रभु नाम।
सानुकूल तिन पै रहैं, शिव हनुमत सियराम ॥

इस पुस्तक में श्रीरामरसरङ्गमणिकृत "युगलनाममंजरी" भी सम्मिलित है। पुस्तक निस्सन्देह पढ़ने योग्य है और सब ही मत वाले इसे पढ़ कर श्रीराम-नाम-कीर्त्तन का आनन्द उठा सकते हैं। इस में कोई ऐसी बात नहीं है जो अन्य मतावलम्बियों को अरोचक हो।

(६) "श्री पीपा जी की कथा"—श्री भक्तमाल-

---

* इन का वृत्तान्त महात्माओं की सूची में देखिये।

वर्णित श्री पीपा जी महाराज की कथा इस पुस्तक में लिखी गई है। इस की रचना में ग्रंथकार ने यह ढंग निकाला है कि श्री भगवान के एक कृपाभाजन परमभक्त की कथा भगवान ही से कह रहे हैं कि आप नें पीपा जी के साथ ऐसा वर्त्ताव किया वैसा वर्त्ताव किया ; उन पर यह कृपा दरसाई वह कृपा दरसाई, इत्यादि। और इस के मध्य मध्य में ईश्वर तथा ईश्वर के भक्तों के सद गुणों का जहां जहां वर्णन आया है उन की श्रेष्ठता दिखलाते हुए पुराचीन तथा नवीन महात्माओं के वाक्यों से उन की पुष्टि करते गये हैं। ऐसा करने में फ़ारसी भाषा के अशआर और मिसेर भी बहुत उद्धृत किये हैं। जहां ईश्वर को सम्बोधन किये हैं वहां पर ये लच्छा का लच्छा ऐसा २ विशेषण देते गये हैं जिन के उच्चारण एवम् श्रवण से मन आह्लादित हो जाता है। इस का नमूना अन्यत्र दिखलाया जायगा।

पीपा जी सम्बन्धी "भक्तमाल" के कवित्तों को एक २ कर के ये इस पुस्तक में सन्निवेशित करते गये हैं। उपाध्याय रामहित शर्म्मा ने १०वें पृष्ठ के नोट में लिखा है कि "भक्त-माल के चौबीसों कवित्तों को ग्रंथकर्त्ता ने इस पुस्तक में उल्लेख किया है।" किन्तु जो प्रथम खण्ड हमारे सामने उपस्थित है उस में केवल २७९ से २८२ पर्य्यन्त कवित्त उद्धृत हुये हैं।

इस पुस्तक में श्री रामनारायणदास जी तथा उपाध्याय रामहित-शर्म्मा-लिखित पादटिप्पणियां अधिकांश पाई जाती हैं।

एक तो कथा ही ललित, दूसरे भाषा मधुर और सरस। पढ़ने से चित्त प्रसन्न हो जाता है। जो आनन्द श्री भारतेन्दु